आकाशिका

(अवतरणिका)

यह छोटा सा सटीक संग्रह प्रयाग-महिला-विद्यापीठ के रजिस्ट्रार श्रीयुत पं० रामेश्वर प्रसाद बी० ए० के अनुरोध से तैयार किया गया है। इसमें केवल १०० पद रखे गए हैं, जिनमें से ३५ पद विनय के ५२ पद कृष्ण की बाल-लीला के और १३ पद कृष्ण के रूप के वर्णन के हैं।

महात्मा सूरदासजी एक भक्त कवि थे अतः उनकी कविता में विनय के पद बड़े महत्व के हैं। उनका स्वच्छ मन और ईश्वर ज्ञान हृदय विनय के पदों में स्पष्ट दिखाई देता है। [illegible]

[illegible]

है। मातृ-भावनाओं को दृढ़ करने के लिये उन्हें यशोदा का अनुकरण करना सिखाया ही जाना चाहिये। इस विचार से कृष्ण की बाल-लीला के पद संग्रह किये गए हैं। इन पदों में उन्हें मातृ-भावनाओं के बड़े ही मनोहर और मधुर छाया-चित्र मिलेंगे, जिन्हें देखकर पाठिकाएं बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं।

सूरदास की कविता पढ़ने से लाभ ही क्या यदि कृष्ण भगवान के सौन्दर्य की छटा आँखों में न समा जाय। इसी तात्पर्य से कुछ पद कृष्ण-रूप वर्णन के इस संग्रह में रख दिये गए हैं।

सूर की भाषा

सूरदास की भाषा 'ब्रजभाषा' है। यह भाषा अब भी इटावा, मथुरा आगरा इत्यादि के ज़िलों में ज्यों की त्यों बोली जाती है। ग्वालियर राज्य के पश्चिमी भाग, भरतपुर राज्य, और करौली में यही भाषा अब भी प्रचलित है। इसका प्राचीन साहित्य बहुत ही बढ़ा-चढ़ा है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों में से अधिकतर कवियों ने इसी भाषा में कविता की है सूर, केशव, मतिराम, बिहारी देव, भूषण, मानराम पद्माकर इत्यादि इस भाषा के बहुत प्रसिद्ध कवि हो गए हैं।

*(ब्रजभाषा की पहचान)

किसी भाषा की पहचान उसके उच्चारण, उसकी क्रियाओं उसके सर्वनामों के रूपों तथा उसकी विभक्तियों (कारक चिह्नों) से हो सकती है। अतः हम इन्हीं विषयों पर यहाँ कुछ लिख कर पाठकों को ब्रजभाषा की पहचान करा देने का उद्योग करेंगे। सूरदास के समय में ब्रजमंडल के कवियों ने परंपरागत काव्य भाषा में ब्रज के शब्दों की भरमार करके उसे 'ब्रजभाषा' नाम दिया। ब्रज में शब्दों का उच्चारण एक विशेष प्रकार से होता है। पहले उसे समझ लेना चाहिये।

१—'इ' के बाद 'अ' का उच्चारण ब्रज को नहीं भाता, अतः संधि करके 'य' कर देते हैं, यथा—

सिआर	से	स्यार
किआरी	से	क्यारी
बिआरी	से	ब्यारी
बिआज	से	ब्याज
बिआह	से	ब्याह
पिआर	से	प्यार

* इस अंश के लिखने में हमने अपने मित्र पं० रामचन्द्रशुक्ल कृत 'बुद्ध-चरित्र' की भूमिका में बड़ी सहायता पाई है, अतः हम उनके आभारी हैं।

२—'उ' के बाद 'अ' का उच्चारण व्रज को प्रिय नहीं, अतः संधि करके 'व' कर दिया जाता है, यथा—

कुँआर	से	क्वाँर
दुआर	से	द्वार

३—व्रजजन 'इ' से 'य' को, और 'उ' से 'व' को अधिक पसन्द करते हैं, यथा—

इह	से	यह
इहाँ	"	यहाँ
हियाँ	"	ह्याँ
उह	"	वह
ऊ	"	वा
उहाँ	"	वहाँ
आइहै	"	आयहै
पाइहै	"	पायहै
अइहै	"	अयहै (ऐहै)
जइहै	"	जयहै (जैहै)

४—'ऐ' और 'औ' का संस्कृत उच्चारण ('अइ' और 'अउ' समानवाला) अब केवल 'य' और 'व' के पहले ही रह गया क्योंकि यहाँ दूसरे 'य' और 'व' का स्थापन नहीं हो सकता, जैसे गैया, कन्हैया, जुन्हैया, भैया और कौवा, हौवा, नौवा, नौवा इत्यादि में

५—ब्रज के उच्चारण में कर्म के चिह्न 'को' का उच्चारण 'कौ' के समान, अधिकरण के चिह्न 'में' का उच्चारण 'मैं' के समान हो जाता है।

६—माहिं, नाहिं, याहि, वाहि, इत्यादि शब्दों के उच्चारण में 'ह' के स्थान में 'य' बोलते हैं, जैसे—

माहिं से मायँ
नाहिं से नायँ
याहि से याय
वाहि से वाय
काहि से काय इत्यादि

७—'यँ' का उच्चारण 'मैं' सा जान पड़ता है,

आवँगे से आमैंगे
जायँगे से जामैंगे

(विशेषताएँ)

१ ब्रज में साधारण क्रिया के तीन रूप होते हैं :—

(क) 'नौ' से अन्त होने वाला, जैसे करनौ लेनौ, देनौ।

(ख) 'न' से अन्त होनेवाला, जैसे आवन, जान, लेन, देन।

(ग) 'बौ' से अन्त होनेवाला, जैसे—करिबौ लैबौ, दैबौ इत्यादि

२—'उ' के बाद 'अ' का उच्चारण व्रज को प्रिय नहीं, अतः संधि करके 'व' कर दिया जाता है, यथा—

कुँआर	से	क्वाँर
दुआर	से	द्वार

३—व्रजजन 'इ' से 'य' को, और 'उ' से 'व' को अधिक पसन्द करते हैं, यथा—

इह	से	यह
इहाँ	"	यहाँ
हियाँ	"	ह्याँ
उह	"	वह
ऊ	"	वा
उहाँ	"	वहाँ
जाइहै	"	जायहै
पाइहै	"	पायहै
अइहै	"	अयहै (ऐहै)
जइहै	"	जइहै (जैहै)

४—'ऐ' और 'औ' का संस्कृत उच्चारण ('अइ' और 'अउ' के समानवाला) अब केवल 'य' और 'व' के पहले ही रह गया है, क्योंकि यहाँ दूसरे 'य' और 'व' की स्थापना नहीं हो सकता, जैसे गैया, कन्हैया, तुम्हैया, भैया और कौवा, हौवा, लौवा, नौवा इत्यादि में।

५—ब्रज के उच्चारण में कर्म के चिह्न 'को' का उच्चारण 'कौ' के समान, अधिकरण के चिह्न 'में' का उच्चारण 'मैं' के समान हो जाता है।

६—माहिँ, नाहिँ, याहि, वाहि, इत्यादि शब्दों के उच्चारण में 'ह' के स्थान में 'य' बोलते हैं, जैसे—

माहिँ	से	मायँ	
नाहिँ	से	नायँ	
याहि	से	याय	
वाहि	से	वाय	
काहि	से	काय	इत्यादि

७—'वैं' का उच्चारण 'मैं' सा जान पड़ता है,

आवैंगे	से	आमैंगे
जावैंगे	से	जामैंगे

(विशेषताएँ)

१—ब्रज में साधारण क्रिया के तीन रूप होते हैं :—

(क) 'नो' से अन्त होने वाला जैसे—करनो, लेनो, देनो।

(ख) 'न' से अन्त होनेवाला, जैसे—आवन, जान, लेन, देन।

(ग) 'बो' से अन्त होनेवाला जैसे—करिबो, लैबो, दैबो इत्यादि

(२) सकर्मक क्रिया के भूतकाल के कर्ता में 'ने चिह्न' लगता है, "श्याम तुम्हारी मदन मुरलिका नेक सी 'ने' जग मोह्यो"। सूरदास ने इसका प्रयोग कम ही किया है, पर किया जरूर है।

(३) सकर्मक भूतकालिक क्रिया का लिंग और वचन भी कर्म के अनुसार होते हैं, जैसे—हौं सखि नई चाह यह पाई। मैया री! मैं नाहीं दधि खायो।

(४) सब प्रकार की क्रियाओं में लिंगभेद पाया जाता है।

(५) साधारण क्रियाओं के रूप तथा भूतकालिक कृदंत भी 'ओकारान्त' होते हैं, जैसे (साधारण क्रिया)—करनो, देखो, देनो, दीबो, आवनो। (भूतकालिक कृदंत)—आयो, गयो, खायो, चख्यो।

(६) क्रियाओं में और सर्वनामों में कभी कभी पुराने और नये दोनों रूप पाये जाते हैं—जैसे—

	(पुराने)	नये)
(क्रिया)	करहि, करहु	करै, करो
	आवहि, जाहि	आयँ, जायँ
(सर्वनाम	जिनहि	जिन्हें
	तिनहि	तिन्हें
	जाहि	जाको
	ताहि	ताको

परन्तु सूरदास जी ने कहीं कहीं 'हि' लगा कर भी काम चलाया है। अस्तु,

हैं तो और भी अनेक बारीकियाँ, पर चतुर पाठिका इतनी बातें जान लेने से ब्रजभाषा को पहचान सकेंगी। अतः अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

ब्रजभाषा में परंपरागत पुरानी काव्यभाषा के प्रयोग अबतक भी थोड़े बहुत मिलते हैं, जैसे—लोयन, सायर, करहिं स्यामहिं, दीह, कौन, हो, हाँ, हुतो, ह्यौं, हि इत्यादि। प्राकृत, संस्कृत, तथा अपभ्रंश प्राकृत की क्रियाओं के रूप अलग ही पहिचाने जा सकते हैं, जैसे—कीजै, लीजै, उपजंत, करंत, पठंत इत्यादि।

खड़ी बोली और अवधी से तो ब्रजभाषा का चोली-दामन का सा साथ है। विदेशी भाषाओं (फारसी, अरबी, पंजाबी गुजराती इत्यादि) से शब्द लेकर मनमाने ढंग से नया रूप दे देना तो इस भाषा की एक खास विशेषता है। इसी शक्ति से पुष्ट होकर यह भाषा भरपूर मस्त और चुस्त हो गई है। इसके उदाहरण [illegible] में सर्वत्र पाये जाते हैं।

इस भाषा की उपयोगिता

कविता के लिए ब्रजभाषा [illegible]

इसका विवेचन करना परमावश्यक जान पड़ता है। कविता किसे कहते हैं इस विषय में आचार्यों के भिन्न भिन्न मत हैं। अपने अपने रुचिवैचित्र्य के अनुसार लोगों ने 'कविता' की परिभाषायें की हैं। यदि पण्डितराज जगन्नाथ "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" कह कर काव्य की व्याख्या करते हैं, तो साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज 'शब्द' की चमत्कृति को काव्य न मानकर कह बैठते हैं "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"। परन्तु अम्बिकादत्त व्यासजी इन दोनों लक्षणों से सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहते हैं कि केवल 'शब्द' और 'वाक्य' तक ही 'काव्य' को सीमित क्यों किया जाय। अतः उनकी सम्मति के अनुसार 'लोकोत्तरानन्ददाता प्रबंधः काव्यनाम भाक्' अर्थात् लोकोत्तर आनन्द देनेवाली 'रचना' ही 'काव्य' है। परिभाषा कोई चाहे किसी प्रकार क्यों न करे, पर तात्पर्य सब का एक ही है। 'काव्य' उस भावपूर्ण रमणीय रचना को कहते हैं जो अन्तस्तल के स्पर्श कर चित्त में एक अभूतपूर्व लोकोत्तर आनन्द का संचार करती है। मानव-हृदय का स्वाभाविक गुण है कि वह कोमलता, मधुरता, सुन्दरता एवं सरसता से [illegible] अधिक पसन्द करता है। अतः जिस रचना में इन गुणों के साथ साथ हृदय को [illegible] वही 'कविता' है। [illegible] साहित्यिकता का आवश्यक [illegible] है [illegible] — [illegible] और [illegible] [illegible] नहीं। [illegible] शब्दों के

पुनः दो भेद होते हैं—'रमणीय' और 'अरमणीय' । काव्य में अरमणीय शब्दों के लिये स्थान ही नहीं है । 'काव्य' बिना रमणीय शब्दों के 'काव्य' कहा ही नहीं जा सकता । अतः कोमल कान्त पदावली का होना काव्य में अत्यावश्यक है । कोई भाव कितना ही सुन्दर क्यों न हो अगर उसके लिये श्रुतिकटु शब्दों का प्रयोग किया जायगा तो वह मन को रुचेगा नहीं । इसके विपरीत 'कोमल कान्त पदावली' द्वारा साधारण बोलचाल की भाषा में भी रौनक आ जाती है, शुष्क और कर्कश विषयों में भी नई जान सी आ जाती है । 'कादम्बरी' के रचयिता कवि बाणभट्ट' के विषय में एक किम्बदन्ती प्रसिद्ध है । जब वे कादम्बरी का पूर्वार्द्ध मात्र समाप्त कर चुके थे और नायक को नायिका के पास पहुँचाया ही था, तब कराल काल ने कादम्बरीकथाकार कवि के नाम स्वर्ग का 'समन' जारी कर दिया । अपनी इस अपूर्व कृति को अपूर्ण देख कर कवि के मन में महती ग्लानि हुई किन्तु अपने सुयोग्य सुत-युगल का स्मरण आते ही चित्त में ढाढस बँधा । तुरन्त अपने आज्ञाकारी विद्वान् पुत्रों को बुला भेजा । उनके आने पर उन्होंने सामने के एक सूखे पेड़ की ओर इशारा करते हुए जिज्ञासा की कि वह कौनसा पदार्थ है ? ज्येष्ठ पुत्र ने जो रचना में किसी से कम न था, यह समझ कर कि एक सूखे पेड़ के लिये 'शुष्क शब्दावली' का ही प्रयोग करना समुचित है, झट से उत्तर दिया—'शुष्कोवृक्षस्तिष्ठत्यग्रे' क्या ही विद्वत्तापूर्ण उत्तर था । एक सूखे पेड़ की शुष्कता का

चित्र ही अपनी शब्दावली में खींच दिया। परुषावृत्ति के प्रयोग से उन्होंने पेड़ की शुष्कता का भान पूरी तरह से करा दिया। किन्तु कवि का चित्त इससे सन्तुष्ट न हुआ। पुनः उन्होंने अपनी जिज्ञासापूर्ण दृष्टि अपने लघु तनय की ओर फेरी। सुकवि का सुयोग्य पुत्र 'पुलिन्द' कहता है "नीरस तरुरिह विलसति पुरतः"। कमाल कर दिया। अपनी कोमल कान्त पदावली से एक सूखे पेड़ को भी हरा भरा कर दिया, नीरस तरु को सरस कर दिया। मरणासन्न पिता के मुख पर आनन्द की एक अपूर्व झलक दिखाई दी, पुलिन्द परीक्षा-पास हो गया। कवि ने अपना कार्य-भार सुपुत्र को सौंप शान्ति की श्वास ली। कहने का तात्पर्य यह है कि कवि कवि—मानवहृदय को न रुचनेवाले—विषयों को भी अपनी कोमल-कान्त-पदावली से सरस कर देता है। व्याकरण, वेदान्त ऐसे ऐसे ऊबा डालने वाले विषयों को भी कविश्रेष्ठ कालिदास, गोस्वामी तुलसीदास, म० सूरदास आदि कवि-पुंगवों ने बहुत ही सरस बना दिया है। ताड़का राम के बाणों से घायल हो खून से लथपथ होकर मर जाती है पर कालिदास अपने पाठकों के सामने यह एक [illegible] बीभत्स दृश्य रखना पसन्द नहीं करते, वे कहते हैं

"राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा॥"

—रघु० सर्ग ११, श्लोक २०।

इसी प्रकार तुलसीदास जी को भी देखिये । रणभूमि में रामचन्द्रजी विजय प्राप्त करके खड़े हैं। उनका शरीर राक्षसों के रुधिर के छींटों से भरा-पुरा है । पर कवि को इसमें भी बीभत्सता के बदले, चमत्कार ही नजर आता है, सौन्दर्य ही दृष्टिगोचर होता है, क्या सुन्दर कल्पना है, देखिये—

"भुजदंड सर-कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥"

—लंका कांड।

कवि-कौशल इसे कहते हैं। कवि अपनी प्रतिभा से अरुचिपूर्ण विषयों को भी रुचिपूर्ण दृष्टि से ही देखता है । कुरूप वस्तुओं को भी अपनी ललित पदावली का आवरण देकर सुन्दर बना देता है । ललित पदावली से एक ग्रामीण भी प्रसन्न हो जाता है । बालकों की तोतली बोली में गाली भी प्रिय जान पड़ती है । [illegible] हमको [illegible]

भी ये उपर्युक्त सभी गुण वर्त्तमान हैं, वरन् मधुरता में बँगला से भी बढ़ कर है। हिन्दी के अन्तर्गत गिनी जानेवाली भाषाओं में से जो लालित्य, जो माधुर्य, जो मनोमोहकता व्रजभाषा में है वह और किसी भाषा में है ही नहीं। व्रजभाषा में काव्य के उपयोगी रमणीय शब्दों की भरमार है। कर्णकटुता तो है ही नहीं। व्रजभाषा में एक विशेष सिफत यह भी है कि इसमें हम शब्दों को स्वेच्छानुकूल बना सकते हैं। 'कृष्ण' से 'कान्ह' 'कन्हैया' कँधैया, कन्हुया इत्यादि जैसे कोमल नाम दे देना तो इस भाषा के बायें हाथ का खेल है। 'हृदय' शब्द का 'हकार' हृदय में काँटे सा गड़ता है, पर यही शब्द जब व्रजभाषा में आकर 'हिय' हो जाता है तो कितना श्रुतिप्रिय मालूम पड़ता है। खड़ी बोली के कवियों को भी व्रजभाषा के इन मधुर शब्दों का प्रयोग झख मार कर करना ही पड़ता है। अपनी कविता में लालित्य लाने के लिये कवियों ने इनका प्रयोग किया भी है। पर जो दुराग्रह वश इस सिद्धान्त को नहीं मानते उनकी कविता में खड़ी बोली का 'खड़ापन' कान फाड़ डालता है। इस क्या न विषयोत्कृष्टता करनी विचारोत्कृष्टता में 'उत्कृष्टता' शब्द की कठोरता ने और भी क्लिष्टता आ गई है। 'उत्कृष्टता के स्थान पर यदि किसी समानार्थ वाले कोमल शब्द का प्रयोग किया गया होता तो क्या ही सुन्दर होता। इस हमारे कथन से यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि खड़ी बोली में कविता नहीं करनी चाहिये,

भी ये उपर्युक्त सभी गुण वर्त्तमान हैं, वरन् मधुरता में बँगला से भी बढ़ कर है। हिन्दी के अन्तर्गत गिनी जानेवाली भाषाओं में से जो लालित्य, जो माधुर्य, जो मनोमोहकता ब्रजभाषा में है वह और किसी भाषा में है ही नहीं। ब्रजभाषा में काव्य के उपयोगी रमणीय शब्दों की भरमार है। कर्णकटुता तो है ही नहीं। ब्रजभाषा में एक विशेष सिफत यह भी है कि इसमें हम शब्दों को स्वेच्छानुकूल बना सकते हैं। 'कृष्ण' से 'कान्ह' 'कन्हैया' कँधैया, कन्हुवा इत्यादि जैसे कोमल नाम दे देना तो इस भाषा के बायें हाथ का खेल है। 'हृदय' शब्द का 'हकार' हृदय में काँटे सा गड़ता है, पर यही शब्द जब ब्रजभाषा में आकर 'हिय' हो जाता है तो कितना श्रुतिप्रिय मालूम पड़ता है। खड़ी बोली के कवियों को भी ब्रजभाषा के इन मधुर शब्दों का प्रयोग झख मार कर करना ही पड़ता है। अपनी कविता में लालित्य लाने के लिये कवियों ने इनका प्रयोग किया भी है। पर जो दुराग्रह वश इस सिद्धान्त को नहीं मानते उनकी कविता में खड़ी बोली का 'खड़ापन' कान फाड़े डालता है। हम क्या न विषयान्तर्दृष्टता करती विचा-रान्तर्दृष्टता में 'उत्कृष्टता' शब्द की कठोरता से और भी छिपता जा रहा है। 'उत्कृष्टता' के स्थान पर यदि किसी समानार्थ वाची कोमल शब्द का प्रयोग किया गया होता तो क्या ही सुन्दर होता। इस हमारे कथन से यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि खड़ी बोली में कविता नहीं करनी चाहिये,

ब्रजभाषा में 'वीररस' की कविता की गई है। और उसमें पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस प्रभृति अवधी भाषा के ग्रन्थों में 'वीररस' का वर्णन एक तो किया ही बहुत कम है, दूसरे जहाँ कहीं थोड़ा बहुत किया भी है वहाँ वह ओज नहीं टपकता। वीररस, की कविता करने के लिये उन्होंने भी 'कवितावली', रामायण में ब्रजभाषा का ही आश्रय लिया है। कवितावली में 'वीररस' का वर्णन बड़ी ही उत्तमता और सफलता के साथ हुआ है। पढ़ते ही रग रग में जोश आ जाता है। एक उदाहरण देखिये—

"मत्तभट-मुकुट-दसकंध-साहस-सइल

सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी।

दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,

सेष संकुचित, संकित पिनाकी॥

चलत महि मेरु, उच्छलत सायर सकल,

बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।

रजनिचर-घरनि घर गर्भ अर्भक स्रवत

सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥"

—कवितावली [illegible]

[illegible] ... उदाहरण देकर [illegible] सिद्ध कीजिए कि ब्रजभाषा साहित्य में [illegible] माना जाता है या नहीं?

सब प्रकार के भावों को प्रकट करने के लिये ब्रजभाषा में काफी शब्दावली है और आवश्यकतानुसार इसका शब्दकोष और भी बढ़ाया जा सकता है, किसी से उधार लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती। लचीलापन ब्रजभाषा का एक ऐसा गुण है जो और भाषाओं में इस परिमाण में देखने में नहीं आता। इसके लचीलेपन के कारण हम शब्दों को मनोवांछित रूप दे सकते हैं। इसी गुण के कारणकवियों ने ब्रजभाषा को कविता के लिये विशेष उपयोगी समझा है। क्योंकि शब्दों के अभाव में जिस समय कवि को दूसरी भाषा से शब्द उधार लेने पड़ते हैं या गढ़ने पड़ते हैं, उस समय बड़ी कठिन समस्या आ पड़ती है। अनुकूल शब्द न मिलने से भाव ही पलट जाता है। पर्यायवाची दूसरा शब्द रखने से भी भाव नष्ट हो जाता है। ऐसे स्थानों पर भाषा का लचीलापन ही उसकी कवितातरी का कर्णधार होता है। ब्रजभाषा में इस गुण का प्राचुर्य है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण ब्रजभाषा कविता के लिये सबसे उपयुक्त भाषा समझी गई है।

(सूर का साहित्य)

विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा समस्त सत्रहवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य का बड़ा ही सौभाग्यशाली समय है। वैष्णव सम्प्रदाय के एक से एक अनुपम आचार्यों, महात्माओं और कवियों ने अपने जन्म से इसी समय को

अलंकृत किया था। भक्तश्रेष्ठ कविरत्न महात्मा सूरदासजी का भी जन्म इसी समय हुआ था जिनके नाम से यह काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'सौरकाल' (सं० १५६० से संवत् १६२० विक्रमीय तक) के नाम से प्रख्यात है। यह वह काल है जब ब्रजभाषा का नवनांकुर—अथवा यों कहिये कि हिन्दी-साहित्याकाश—महात्मा सूरदास ऐसे सूर्य की दिव्य प्रभा से आलोकित हो उठा था, यह वह समय है जिस समय ब्रजभाषा का साहित्य-सूर्य अपने मध्याह्न काल में पहुँच चुका था; यह वह समय है जब 'सूर' सूर-कर-विकसित कवि-कुल-कमल कानन ने अपनी हरिभजन रूपी मीठी सुगन्ध से भक्त-जनों के नासापुटों को आपूरित एवं परितृप्त कर उनको ब्रह्मा-नन्द के हिन्दोले में दोलायमान कर दिया था; यह वह समय है जब भक्तवर महात्मा सूरदासजी के काव्यामृत पान से सहृदय रसिक जन 'ब्रह्मानन्द सहोदर' काव्यानन्द का अनुभव कर आनन्द-सागर में गोते लगाते थे; और यह वह समय है जिसकी कीर्ति-कौमुदी आज तक हिन्दी-साहित्य का मुख उज्ज्वल किये हुए है। वास्तव में यह एक अभूतपूर्व समय [illegible] [illegible] बहुमूल्य [illegible] [illegible] इस काल के [illegible] हैं।

सब प्रकार के भावों को प्रकट करने के लिये ब्रजभाषा में काफी शब्दावली है और आवश्यकतानुसार इसका शब्दकोष और भी बढ़ाया जा सकता है, किसी से उधार लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती। लचीलापन ब्रजभाषा का एक ऐसा गुण है जो और भाषाओं में इस परिमाण में देखने में नहीं आता। इसके लचीलेपन के कारण हम शब्दों को मनोवांछित रूप दे सकते हैं। इसी गुण के कारणकवियों ने ब्रजभाषा को कविता के लिये विशेष उपयोगी समझा है। क्योंकि शब्दों के अभाव में जिस समय कवि को दूसरी भाषा से शब्द उधार लेने पड़ते हैं या गढ़ने पड़ते हैं, उस समय बड़ी कठिन समस्या आ पड़ती है। अनुकूल शब्द न मिलने से भाव ही पलट जाता है। पर्यायवाची दूसरा शब्द रखने से भी भाव नष्ट हो जाता है। ऐसे स्थानों पर भाषा का लचीलापन ही उसकी कविताजरी का कर्णधार होता है। ब्रजभाषा में इस गुण का प्राचुर्य है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण ब्रजभाषा कविता के लिये सबसे उपयुक्त भाषा समझी गई है।

(सूर का साहित्य)

विक्रमीय पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा सम्पूर्ण सोलहवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य का बड़ा ही सौभाग्यशाली समय है। वैष्णव सम्प्रदाय के एक से एक अनुपम आचार्यों, महात्माओं और कवियों ने अपने जन्म से इसी समय को

अलंकृत किया था। भक्तश्रेष्ठ कविरत्न महात्मा सूरदासजी का भी जन्म इसी समय हुआ था जिनके नाम से यह काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'सौरकाल' (सं० १५६० से संवत् १६२० विक्रमीय तक) के नाम से प्रख्यात है। यह वह काल है जब व्रजभाषा का गगनाङ्गन—अथवा यों कहिये कि हिन्दी-साहित्याकाश—महात्मा सूरदास ऐसे सूर्य की दिव्य प्रभा से आलोकित हो उठा था, यह वह समय है जिस समय व्रजभाषा का साहित्य-सूर्य अपने मध्याह्न काल में पहुँच चुका था, यह वह समय है जब 'सूर' सूर-कर-विकसित कवि-कुल-कमल कानन ने अपनी हरिभजन रूपी भीनी सुगन्ध से भक्त-जनों के नासापुटों को आपूरित एवं परितृप्त कर उनको ब्रह्मानन्द के हिन्दोले में दोलायमान कर दिया था; यह वह समय है जब भक्तवर महात्मा सूरदासजी के काव्यामृत पान से सहृदय रसिक जन 'ब्रह्मानन्द सहोदर' काव्यानन्द का अनुभव कर आनन्द-सागर में गोते लगाते थे; और यह वह समय है जिसकी कीर्ति-कौमुदी आज तक हिन्दी-साहित्य का मुख उज्ज्वल किये हुए है। वास्तव में वह एक अभूतपूर्व समय होगा, जब सूरदासजी की अमृतवर्षिणी जिह्वा से काव्य, संगीत एवं भक्ति की त्रिवेणी ने प्रवाहित होकर काव्य रसिकों, संगीत प्रेमियों तथा भक्त जनों को निमग्न किया होगा। उस समय की महिमा विस्तारपूर्वक वर्णन करने का यहाँ अवकाश नहीं; हमारी क्षुद्र लेखनी इस कार्य में नितान्त असमर्थ है

सब प्रकार के भावों को प्रकट करने के लिये ब्रजभाषा में काफी शब्दावली है और आवश्यकतानुसार इसका शब्दकोश और भी बढ़ाया जा सकता है, किसी से उधार लेने की जरूरत नहीं पड़ती। लचीलापन ब्रजभाषा का एक ऐसा गुण है जो और भाषाओं में इस परिमाण में देखने में नहीं आता। इसके लचीलेपन के कारण हम शब्दों को मनोवांछित रूप दे सकते हैं। इसी गुण के कारण कवियों ने ब्रजभाषा को कविता के लिये विशेष उपयोगी समझा है। क्योंकि शब्दों के अभाव में जिस समय कवि को दूसरी भाषा से शब्द उधार लेने पड़ते हैं या गढ़ने पड़ते हैं, उस समय बड़ी कठिन समस्या आ पड़ती है। अनुकूल शब्द न मिलने से भाव ही पलट जाता है। पर्यायवाची दूसरा शब्द रखने से भी भाव नष्ट हो जाता है। ऐसे स्थलों पर भाषा का लचीलापन ही उसकी कविता का शृंगार होता है। ब्रजभाषा में इस गुण का प्राचुर्य है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण ब्रजभाषा कविता के लिये सबसे उपयुक्त भाषा समझी गई है।

(सूर का साहित्य)

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध [illegible] साहित्य का बड़ा ही सौभाग्यशाली समय है। हिन्दू [illegible] के गढ़ में एक अनुपम आभा [illegible], [illegible] और [illegible] के [illegible] इसी समय का

अलंकृत किया था। भक्तश्रेष्ठ कविरत्न महात्मा सूरदासजी का भी जन्म इसी समय हुआ था जिनके नाम से यह काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'सौरकाल' (सं० १५६० से संवत् १६२० विक्रमीय तक) के नाम से प्रख्यात है। यह वह काल है जब ब्रजभाषा का गगनाङ्गण—अथवा यों कहिये कि हिन्दी-साहित्याकाश—महात्मा सूरदास ऐसे सूर्य की दिव्य प्रभा से आलोकित हो उठा था, यह वह समय है जिस समय ब्रजभाषा का साहित्य-सूर्य अपने मध्याह्न काल में पहुँच चुका था, यह वह समय है जब 'सूर' सूर-कर-विकसित कवि-कुल-कमल कानन में अपनी हरिभजन रूपी भीनी सुगन्ध से भक्त-जनों के नासापुटों को आपूरित एवं परितृप्त कर उनको ब्रह्मानन्द के हिन्दोले में दोलायमान कर दिया था; यह वह समय है जब भक्तवर महात्मा सूरदासजी के काव्यामृत पान से सहृदय रसिक जन 'ब्रह्मानन्द सहोदर' काव्यानन्द का अनुभव कर आनन्द-सागर में गोते लगाते थे; और यह वह समय है जिसकी कीर्ति-कौमुदी आज तक हिन्दी-साहित्य का मुख उज्ज्वल किये हुए है। वास्तव में वह एक अभूतपूर्व समय होगा, जब सूरदासजी की अमृतवर्षिणी जिह्वा से काव्य, संगीत एवं भक्ति की त्रिधारा में प्रवाहित होकर काव्य रसिकों, [illegible] [illegible] [illegible] इस बात से [illegible] है

सब प्रकार के भावों को प्रकट करने के लिये व्रजभाषा में काफी शब्दावली है और आवश्यकतानुसार इसका शब्दकोष और भी बढ़ाया जा सकता है, किसी से उधार लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती। लचीला-पन व्रजभाषा का एक ऐसा गुण है जो और भाषाओं में इस परिमाण में देखने में नहीं आता। इसके लचीलेपन के कारण हम शब्दों को मनोवांछित रूप दे सकते हैं। इसी गुण के कारणकवियों ने व्रजभाषा को कविता के लिये विशेष उपयोगी समझा है। क्योंकि शब्दों के अभाव में जिस समय कवि को दूसरी भाषा से शब्द उधार लेने पड़ते हैं या गढ़ने पड़ते हैं, उस समय बड़ी कठिन समस्या आ पड़ती है। अनुकूल शब्द न मिलने से भाव ही पलट जाता है। पर्यायवाची दूसरा शब्द रखने से भी भाव नष्ट हो जाता है। ऐसे स्थानों पर भाषा का लचीलापन ही उसकी कवितातरी का कर्णधार होता है। व्रजभाषा में इस गुण का प्राचुर्य है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण व्रजभाषा कविता के लिये सबसे उपयुक्त भाषा समझी गई है।

(सूर का साहित्य)

विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा समस्त सत्रहवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य का बड़ा ही सौभाग्यशाली समय है। वैष्णव सम्प्रदाय के एक से एक अनुपम आचार्यों, महात्माओं और कवियों ने अपने जन्म से इसी समय को

अलंकृत किया था। भक्तश्रेष्ठ कविरत्न महात्मा सूरदासजी का भी जन्म इसी समय हुआ था जिनके नाम से यह काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'सौरकाल' (सं० १५६० से संवत् १६२० विक्रमीय तक) के नाम से प्रख्यात है। यह वह काल है जब व्रजभाषा का गगनाङ्गण—अथवा यों कहिये कि हिन्दी-साहित्याकाश—महात्मा सूरदास ऐसे सूर्य की दिव्य प्रभा से आलोकित हो उठा था, यह वह समय है जिस समय व्रजभाषा का साहित्य-सूर्य अपने मध्याह्न काल में पहुँच चुका था; यह वह समय है जब 'सूर' सूर-कर-विकसित कवि-कुल-कमल कानन ने अपनी हरिभजन रूपी भीनी सुगन्ध से भक्त-जनों के नासापुटों को आपूरित एवं परितृप्त कर उनको ब्रह्मानन्द के हिन्दोले में दोलायमान कर दिया था; यह वह समय है जब भक्तवर महात्मा सूरदासजी के काव्यामृत पान से सहृदय रसिक जन 'ब्रह्मानन्द सहोदर' काव्यानन्द का अनुभव कर आनन्द-सागर में गोते लगाते थे, और यह वह समय है जिसकी कीर्ति-कौमुदी आज तक हिन्दी-साहित्य का मुख उज्ज्वल किये हुए है। वास्तव में वह एक अभूतपूर्व समय था, जब सूरदासजी की अमृतवर्षिणी जिह्वा से काव्य, संगीत एवं भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित होकर काव्य रसिकों, संगीत-प्रेमियों एवं भक्तजनों को निहाल किया करती थी। अब [illegible] की जीवनी [illegible] नहीं [illegible] इस बारे में [illegible]

सूर-साहित्य कितना है, क्या है, कैसा है, इस विषय के निर्णय करने में अभी तक केवल कपोलकल्पित कल्पनाओं का ही आधार लेना पड़ता है। वास्तविक तथ्य का अभी तक कुछ भी पता नहीं। हिन्दी साहित्य का इतिहास भी इस विषय में मौन धारण किये है, करे भी तो क्या? इस का पता चले कैसे? हिन्दी के दुर्भाग्य से हिन्दी-साहित्य का बहुत सा अंश शासकों की शनैश्चर-दृष्टि से असमय ही अतीत की गोद में सो गया। न जाने कितने पुस्तकालय उनके कोपकृशानु में स्वाहा हो गये, इसका कोई प्रमाण नहीं। अतः ऐतिहासिक अन्वेषण के लिये सत्य या झूठ जो कोई आधार मिल जाता है लाचार उसे ही मान लेना पड़ता है। यही दशा 'सूर-साहित्य' के विषय में भी है। सूरदासजी ने क्या लिखा और कितना लिखा इसे कोई नहीं कह सकता, न इसके जानने का हमारे पास कोई साधन ही है। सूरदासजी की कृतियों में से (१) सूर-सागर, (२) सूरसारावली और (३) साहित्य लहरी—ये ही तीन ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। (१) ब्याहलो, (२) नलदमयन्ती, (३) पदसंग्रह (४) नाग-लीला आदि कई ग्रन्थ इनके और बतलाए जाते हैं, पर जैसा ऊपर कहा जा चुका है इनका कोई प्रमाण नहीं है, न ये ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं जिनसे इस बात का याथातथ्य निर्णय किया जा सके। ब्याहलो किस प्रकार का ग्रन्थ होगा, उसमें किस विषय का वर्णन होगा यह किसी को ज्ञात नहीं।

'मदनमोहन' एवं अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदासजी विशेष परिचित हैं। अतः यह संभव हो सकता है कि ये ग्रन्थ 'अष्टछाप' के 'सूरदास' के न होकर किसी अन्य 'सूरदास' के हों। पद संग्रह आदि के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। अथवा 'सूरसारावली' की भाँति ये भी 'सूरसागर' से संग्रह किये गये होंगे। ये पुस्तकें अभी तक किसी के देखने में नहीं आईं। अतः इनका निर्णय भी विवाद-ग्रस्त ही है।

अब हम सूरदासजी की उन कृतियों की ओर चलते हैं जो उनके नाम से प्रसिद्ध तो हैं ही साथ ही प्राप्य भी हैं। अतः इनको सूरदास-कृत मानने में प्रमाण भी मिल जाते हैं। इनमें सूरदासजी के व्यक्तित्व की—उनके कवित्व की—छाप है जिससे उनको पहिचानना किसी साहित्यमर्मज्ञ के लिये कोई कठिन कार्य नहीं है। 'सूरसारावली' सूरसागर के पश्चात् रची गई जान पड़ती है। यह कोई पृथक् ग्रन्थ नहीं है किन्तु सूरसागर की सूची ही है। सुतरां सूरसागर ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो सूरदासजी की कीर्तिकौमुदी से हिन्दी साहित्य को उज्वल किये है और जो कुछ ग्रन्थ हैं वे या तो सूरसागर के सामने कोई मूल्य नहीं रखते या सूरसागर के ही सार-भाग हैं।

'सूरसागर' सूरदासजी का कोई 'प्रबन्ध काव्य' नहीं है। अतः इसकी गणना रीतिबद्ध 'महाकाव्यों' में नहीं की जा

'मदनमोहन' एवं अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदासजी विशेष परिचित हैं। अतः यह संभव हो सकता है कि ये ग्रन्थ 'अष्टछाप' के 'सूरदास' के न होकर किसी अन्य 'सूरदास' के हों। पद संग्रह आदि के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। अथवा 'सूरसारावली' की भाँति ये भी 'सूरसागर' से संग्रह किये गये होंगे। ये पुस्तकें अभी तक किसी के देखने में नहीं आई'। अतः इनका निर्णय भी विवाद-ग्रस्त ही है।

अब हम सूरदासजी की उन कृतियों की ओर चलते हैं जो उनके नाम से प्रसिद्ध तो हैं ही साथ ही प्राप्य भी हैं। अतः इनको सूरदास-कृत मानने में प्रमाण भी मिल जाते हैं। इनमें सूरदासजी के व्यक्तित्व की—उनके कवित्व की—छाप है जिससे उनको पहिचानना किसी साहित्यमर्मज्ञ के लिये कोई कठिन कार्य नहीं है। 'सूरसारावली' सूरसागर के पश्चात् रची हुई जान पड़ती है। यह कोई पृथक् ग्रन्थ नहीं है। किन्तु सूरसागर की सूची ही है। सुतरां सूरसागर ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो सूरदासजी की कीर्ति कौमुदी से हिन्दी साहित्य को उज्ज्वल किये है। और जो कुछ ग्रन्थ हैं वे या तो सूरसागर के सामने कोई मूल्य नहीं रखते या सूरसागर के ही सार-भाग हैं।

'सूरसागर' सूरदासजी का कोई प्रबन्ध-काव्य' नहीं है! अतः इसकी गणना रीतिबद्ध 'महाकाव्यों' में नहीं की जा

'सूरसागर' को श्रीमद्भागवत के ढंग से लिखा होता तो ये सब बातें उसमें न आने पातीं। यह ठीक उसी सिलसिले में लिखा गया होता जिस शैली के अनुसार श्रीमद्भागवत ग्रंथ लिखा हुआ है। इन कारणों से हम सूरसागर को श्रीमद्भागवत का अनुवाद नहीं मान सकते। यह—जैसा कि हम कह चुके हैं—'सूरदास' जी के गाये हुए पदों का श्रीमद्भागवतानुक्रम से संकलित संग्रह मात्र है। सूरदासजी भक्ति की उमंग एवं प्रेम के आवेश में समय समय पर अनेक पद एक साथ रच डालते थे। अतः कथा प्रसंगों का न्यूनाधिक होना अथवा एक ही विषय की पुनरावृत्ति का होना बहुत स्वाभाविक है। यह ग्रन्थ 'प्रबन्ध-काव्य' की दृष्टि से नहीं रचा गया है। अतः इन सब दोषों की गिनती 'काव्य-दूषणों' में नहीं की जा सकती। सूरसागर में एक प्रकार से समस्त भागवत की कथा आ गई है। किन्तु दशम स्कंध में श्रीकृष्णजी की लीला का वर्णन खूब विस्तार पूर्वक किया गया है और यही सूरदासजी का मुख्य ध्येय था।

यह प्रसिद्ध है कि 'सूरदासजी के सूरसागर' की पद-संख्या सवा लाख है [illegible] प्राप्त नहीं [illegible] में सन्देह है। [illegible] सूरसागर के कई एक संस्करण निकल [illegible] प्रेस, लखनऊ, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई [illegible] प्रेस [illegible] के संस्करण प्रसिद्ध हैं। इन संस्करणों में [illegible] कथा में पाँच प्रकार से अधिक

थे। अतएव उनकी और महाकवि बिहारी की तुलना कैसी ? आचार्य केशव की तुलना आचार्य देव से की जा सकती है अवश्य, पर वहाँ आचार्य केशव का पलड़ा बहुत नीचे झुका हुआ जान पड़ता है। देव उनका सामना कर नहीं सकते। खेद है कि इस प्रकार की अनर्गल चेष्टाओं के कारण हिन्दी-साहित्य में आज दिन बड़ी अंधा-धुन्धी चल रही है, लोगों में भ्रम का अन्धकार दिन दिन फैलता जा रहा है, पर इसका प्रतीकार कोई नहीं।

सूर और तुलसी के विषय में भी यह विवाद बहुत दिनों से चला आ रहा है, पर अभी तक इस बात का निर्णय नहीं हो पाया कि कौन श्रेष्ठ है। हो भी तो कैसे ? जब कोई किसी से श्रेष्ठ या घट कर हो तब न ! किन्तु महात्मा तुलसीदासजी की व्यापकता को देखते हुए जब हम सूर को सामने लाते हैं तो 'तुलसी' का पलड़ा कुछ झुका हुआ नज़र आता है। तुलसी ने सभी क्षेत्रों का मसाला भरा है किसी को नहीं छोड़ा। साहित्यिक, सांगीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, राजनीतिक, दार्शनिक कोई भी क्षेत्र ऐसा न बचा जो 'तुलसी' की कृपा-कोर से वंचित रहा हो। तुलसी का लक्ष्य इतना संकुचित नहीं था कि वे कविता या सम्प्रदाय तक ही सीमित रहते। कवि का धर्म है कि वह अपने समय की सभी प्रकार की— साहित्यिक, सामाजिक, नैतिक, आदि—विश्रृङ्खलताओं को दूर करे। तुलसी ने यही किया भी। इसके विपरीत सूर की

हृदय एकान्त-प्रेमी था। इसी कारण उन्होंने एकमात्र प्रेम का ही वर्णन किया। प्रेम के सभी अंगों का खूब विस्तृत वर्णन किया। यद्यपि दोनों महात्माओं और महाकवियों ने जो भी कविता की सब 'स्वान्तः सुखाय' की, किन्तु 'तुलसी' के 'स्वान्तः सुखाय' ने सारे समाज को, मानव-समुदाय से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक समाज को, बहुत लाभान्वित किया, सुख पहुँचाया; और सूर ने केवल काव्य को, सम्प्रदाय को तथा सहृदय रसिक समाज को ही आनन्दाम्बु से आप्लावित किया। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि सूर ने प्रेम के जिन अंगों उपांगों का, अणु परमाणु तक का; दर्शन किया और कराया वह हिन्दी-संसार में ही नहीं संसार के साहित्य में भी नसीब नहीं है।

सुतराम् हिन्दी साहित्य-संसार में महात्मा सूरदासजी का स्थान निर्द्धारित करते हुए एक श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ही ऐसे हैं जो उनसे दो एक कदम आगे बढ़े हुए दिखाई देते हैं। अन्य कोई भी कवि ऐसा नहीं है जो किसी भी सिद्धान्त को दृष्टिकोण में रख कर 'सूर' पर विजय प्राप्त कर सके।

सूरदासजी [illegible] के महाकवि हैं। [illegible] [illegible] [illegible] मधुर [illegible], [illegible]

सुख, एवं इन्हीं सब के द्वारा भगवत्प्राप्ति का सर्व सुलभ उपाय, यदि आपको अभीष्ट हो तो आपको इसके लिये कहीं दूर न भटकना पड़ेगा। बस अब हम अपने समस्त अनुभव और परिश्रम का फल सूत्र रूप में बता देना चाहते हैं—

"यदि आप अलौकिक एवं अविरल आनन्द का अनुभव करना चाहते हैं, तो महात्मा सूरदासजी के पदों को पढ़ कर स्वयं भी काव्यानन्द लूटिये और अपने कलकंठ से गाकर औरों को भी अपना सहभागी बनाइये॥"

किसी कवि ने महात्मा सूरदासजी के पदों की मनोमोहकता के बारे में क्या ही सुन्दर उक्ति कही है—

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर को पीर।
किधौं 'सूर' को पद लग्यो, रहि रहि धुनत सरीर॥

(सूर थे कौन)

'सूरदास' नामधारी पाँच कवि हो गए हैं। सबकी कविता हिन्दी में पाई जाती है। सबकी कविता अलग अलग पहचानी जा सकती है, पर पहचाननेवाले अब विरले हैं। जिन सूरदास की कविता इस संग्रह में एकत्र है, वे वे सूरदास थे जो श्रीविट्ठलनाथजी गोस्वामी के साथ रहा करते थे। ये जाति के सारस्वत ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम रामदास था जो आगरा-मथुरा की सड़क पर स्थित रुनकता नामक ग्राम में रहा करते थे। यहीं सूरदासजी का जन्म सम्वत् १५४० वि० के

लगाया हुआ। ये जन्मान्ध नहीं थे, यह बात इनकी कविता से प्रमाणित हो सकती है। जन्मांध मनुष्य रंगों का वर्णन नहीं कर सकता, पर सूर ने किया है, अतः प्रमाणित है कि ये जन्मान्ध न थे

किसी किसी का मत है कि इनके एक जेठे भाई भी थे। पिता के मर जाने के बाद, अन्धे हो जाने पर, बड़े भाई ने इन्हें निकम्मा समझ घर से निरादरपूर्वक निकाल दिया। ये लड़कपन से ही कृष्णभक्त और उत्तम गायक थे। घर से निकाले जाने पर ये मथुरा को चले। रास्ता भटक कर एक कुएँ में गिर गये, कृष्ण ने आकर इन्हें निकाला और दिव्य दृष्टि देकर दर्शन दिये। इन्होंने कृष्ण से पुनः अन्धे ही बने रहने का वरदान माँगा। मर्म यह था कि कृष्ण की छवि देखकर अब इन आँखों से दूसरे का रूप क्या देखें

[illegible]

[illegible]

के मुख्य आठ कवियों में शामिल हो गये। नित्य नवीन पद रच कर ठाकुरजी को सुनाना, बस यही इनका काम था। इसी कारण इनके पदों में पुनरुक्ति अधिक पाई जाती है।

इनका लोकान्तर्गमन सं० १६२० के लगभग अनुमान किया जाता है। इनको हिन्दी का व्यास कहा जाय तो अनुचित न होगा।

विजय दशमी
सं० १९८६

भगवानदीन (दीन)
काशी

सूर-संग्रह

(विनय)

१—राग बिलावल

चरन कमल बंदौं हरिराई।
जाको कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे कूं सब कछु दरसाई॥
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय बार बार बंदौं तेहि पाई॥

शब्दार्थ—हरिराई=कृष्ण भगवान। पंगु=लँगड़ा, जिसके पैर बेकाम हों। लंघै=लाँघ जाता है। कूं=को। दरसाई=देख पड़ता है। बहिरो=(सं० वधिरः), मूक=गूँगा। रंक=निर्धन। छत्र धराई=छत्र धारण करके। करुनामय=दयावान। पाई=पैर, चरण।

अलंकार—'चरन कमल' में रूपक, 'बार बार' में वीप्सा।

अर्थ—श्रीकृष्ण भगवान के कमल रूपी चरणों की वंदना करता हूँ, जिन श्रीकृष्ण भगवान की कृपा से लँगड़ा मनुष्य पर्वत को लाँघ जाता है, अंधे मनुष्य को सब कुछ दिखलाई पड़ने लगता है, बहिरा सुनने लगता है, और

गूँगा बोलने लगता है तथा निर्धन मनुष्य (इतना धनवान हो जाता है कि) सिर पर राजछत्र धारण करके चलने लगता है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण भगवान बड़े ही दयामय स्वामी हैं, अतः मैं बार बार उनके चरणों की वंदना करता हूँ।

विशेष—"मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्" का भाव है। कृष्ण की कृपा से असंभव भी संभव हो सकता है। कोई कोई "जाकी कृपा ·······छत्र धराई" इन दो पंक्तियों के 'चरण' का विशेषण मानते हैं, पर हम 'हरिराई' का ही विशेषण मानना ठीक समझते हैं। इस पद में यह शिक्षा दी गई कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, असम्भव के भी सम्भव कर सकता है। उसीका भजन करना उचित है (ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता)।

२—राग सारंग

अपनी भक्ति दे भगवान।
कोटि लालच जो दिखावहु नाहिनै रुचि आन॥
जा दिना तें जनमु पायों यहै मेरी रीति।
विषय-विष हठि खात नाहीं डरत करत अनीति॥
थके किंकर जूथ जम के टारे टरत न नेक।
नरक-कूपनि जाइ जमपुर परचो बार अनेक॥

महा माचल मारिबे की सकुच नाहिन मोहिं।
परयौ हौं पन किये द्वारे लाज पन की तोहिं॥
नाहिनै काँचो कृपानिधि करो कहा रिसाइ।
'सूर' तबहुँ न द्वार छाँड़ै डारिहौ कढ़राइ॥

शब्दार्थ—भक्ति=(सं० भज=सेवने) सेवा करने की श्रद्धा और रुचि। भगवान=नीचे लिखी छः शक्तियां जिसमें हों:—

दो०—सब ऐश्वर्य, सुधर्म, यश, श्री, विराग, विज्ञान।
ये षट शक्ति समेत जो तेहि कहिए भगवान॥

नाहिनै=नहीं होती है। रुचि=इच्छा। आन=अन्य। विषय=इंद्रियजन्य आनन्द-लिप्सा। किंकर=चाकर। जूथ=समूह। माचल=मचलनेवाला, हठी। सकुच=लज्जा। पन=प्रतिज्ञा। काँचो=कच्चा, दृढ़ताहीन। डारिहौ कढ़राइ=कढ़िलवाकर फेंकवा दोगे। कढ़राना-(सं० कर्षण+हि० लाना)। नेक=तनक भी।

भावार्थ—हे भगवान! मुझे अपनी सेवा की रुचि और [illegible]

तनक भी हटता नहीं। जमपुर में अनेक बार जाकर नरक-कुंडों में पड़ चुका हूँ। मैं महा हठी हूँ, मार खाने की मुझे लज्जा नहीं। मैं तो भक्ति की भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा करके आपके दरवाज़े पड़ा हूँ। अब अपने पन की लाज रखना आपका काम है (ईश्वर की प्रतिज्ञा यह है:—कोटि बिप्रबध लागें जाहू। आये शरण तजौं नहिं ताहू) हे कृपानिधान! मैं पन का कच्चा नहीं हूँ, आप नाराज़ होकर करेंहोगे क्या? अर्थात् आपके नाखुश होने पर और झिड़कने पर भी मैं यहां से न हटूँगा। झिड़कने और दुतकारने की तो बात ही क्या, यदि आप मुझे बहिलवाकर दूर फेंकवा देंगे तो भी सूरदास दरवाज़ा छोड़नेवाला नहीं।

अलंकार—"विषय विष" में रूपक।

(नोट) इस पद में निज कार्पण्य वर्णन है।

३—राग बिलावल

अबकै माधव मोहि उधारि।
मगन हौं भवअंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारि॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग॥
मीन इंद्रिय अतिहि काटत मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सवार॥

काम क्रोध समेन तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय-सुत नाम-नौका ओर॥
थक्यो बीच बेहाल बिह्वल सुनहु करुनामूल।
स्याम! भुज गहि काढ़ि डारहु 'सूर' ब्रज के कूल॥

शब्दार्थ—अबकै=इस बार। माधव=(सं० मा=लक्ष्मी+धव=पति) नारायण। उधारि=उद्धार करो। मगन=(सं० मग्न) डूबा हुआ। भव-अंबुनिधि=संसार रूपी समुद्र। लोभ-लहरि=लोभ की बढ़ती। ग्राह=घड़ियाल। अनंग=(सं० अन+अंग) कामदेव। मोट=गठरी। भार=भारी, बोझिल। सेवार=(सं० शैवाल) जल के अन्दर उगनेवाले तृणादि। तृष्णा=प्रबल इच्छा। नौका=नाव। बेहाल=मन से व्याकुल। बिह्वल=(सं० विह्वल) तन से कम्पित। कूल=किनारे, निकट।

अर्थ—हे नारायण भगवान! इस बार मेरा उद्धार करो। हे कृपासागर मुरारि! मैं संसाररूपी समुद्र में डूबा हूँ मुझे बचाओ। [illegible] इस समुद्र में माया का [illegible] गहरा जल [illegible] और कामरूपी [illegible] जाता है, [illegible] [illegible] [illegible]

तृष्णा की पवन बड़ा झकोरा दे रही है और स्त्री-पुत्रादि मिल
कर मुझे नाथ-स्वरूपी आपके नाम की ओर देखने तक नहीं
देते। हे करुणामूल श्याम (कृष्ण) सुनो मैं बीच ही में ध
पर तन मन से व्याकुल हो रहा हूँ, अतः आप हाथ पकड़ कर
निकालिए और ब्रज के किनार पर (निकट) डाल दीजिए।

अलंकार—बहुत सुन्दर 'सांगरूपक' है।

(नोट)—इसमें भी कार्पण्य वर्णन है।

४—राग धनाश्री

अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महा मोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल।
भ्रम भर्यो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल॥
तृसना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दियो भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूर करहु नँदलाल॥

शब्दार्थ—हौं=(सं० अहम्) मैं। चोलना=कपड़ा
(यहाँ, नाचनेवालों की पोशाक)। नूपुर=घुँघुरू।

के संग तुम नाचे हो) अतः मेरे नाचने के परिश्रम और कलाओं को समझ सकते हो, अब रीझ कर मेरा नाच बंद करा दो।

अलंकार—गोपाल और नंदलाल शब्दों में परिकरांकुर और समस्त पद में सांग रूपक।

(नोट—) इसमें भी कार्पण्य वर्णन है।

५—राग कान्हरो

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै॥
परम स्वाद सब ही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै॥
सब विधि अगम विचारहि तातें 'सूर' सगुन लीला पद गावै॥

शब्दार्थ—अविगत = जो समझ में न आवे। गति = गति [illegible] [illegible] कहत न आवै = कहते नहीं बनता। [illegible] —मन या [illegible] [illegible] अगोचर = जो इंद्रियज्ञान से न समझा जा सके। [illegible] [illegible]। अगम = अगम्य, जिस तक पहुँच न सके।

सुन-सुनकर गाया करता हूँ, फिर उनका निर्गुण रूप मैं कैसे समझ सकता हूँ।

अलंकार—उदाहरण।

(नोट)—इसमें अनुकूल का ग्रहण और प्रतिकूल का त्याग वर्णन है।

६—राग सारंग

आछो गात अकारथ गारयो।
करी न प्रीति कमल-लोचन सों जनम जनम ज्यों हारयो॥
निसि दिन विषय बिलासनि बिलसत फूटि गईं तव चारयो।
अब लाग्यो पछितान पाइ दुख दीन दई को मारयो॥
कामी कृपन कुचील कुदरसन को न कृपा करि तारयो॥
तातें कहत दयालु देव पुनि काहे 'सूर' बिसारयो॥

शब्दार्थ—आछो = अच्छा। अकारथ गारयो = व्यर्थ नष्ट किया। कमललोचन = कृष्ण भगवान। ज्यों हारयो = प्राण खोए। चारयो = चारों आँखें (दो हृदय की और दो बाहर की)। दई को मारयो = दुर्भाग्य का सताया हुआ। कुचील = मलीन [illegible]रो। कुदरसन = बदसूरत

[illegible] (मैंने), अपना अच्छा शरीर। [illegible] [illegible]) व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। (ईश्वर भजन नहीं किया)

मागध मथो, हरो नृप बंधन, मृतक विप्र-सुत दीनो।
गोपी गाय गोपसुत लगि प्रभु सात द्योस गिरि लीनो॥
श्रीनृसिंह वपु धारि असुर हनि भगत बचन प्रतिपारो।
सुमिरन नाम द्रुपद-तनया कहँ पट समूह तन धारो॥
मुनि मद मेटि दास ब्रत राख्यो अम्बरीष हितकारी।
लाखागृह में सत्रु सैन तें पांडव विपति निवारी॥
बरुणपास ब्रजपति मुकरायो दावानल दुख टारो।
श्रीबसुदेव देवकी के हित कंस महा खल मारो॥
सोइ श्रीपति जुग जुग सुमिरन बस वेद बिसद जस गावै।
असरन सरन 'सूर' जाँचत है, कोऊ सुरति करावै॥

शब्दार्थ—बलबीर=बलदेव जी के भाई (कृष्ण जी)। मागध=मगध देश का राजा (जरासंध)। मागधमथो=जरासन्ध को १७ बार पराजय दी। हरो नृप बंधन=जरासन्ध के यहां अनेक राजा कैद थे उनको छोड़ाया। मृतक विप्रसुत दीनों=अपने गुरु सन्दीपन जी के कई पुत्र जो डूब कर मर गए थे पुनः यमपुर से ला दिये। गिरि लीनो=गोवर्द्धन पर्वत उँगली पर रखे रहे। भगत=भक्त (प्रहलाद) प्रतिपारो=प्रतिपालन किया। द्रुपद-तनया=द्रौपदी। पट धारो=वस्त्र का ही रूप धारण किया। मुनि=दुर्वासा मुनि। ब्रजपति=नंद जी। मुकरायो—छोड़ाए।

(नोट) इस पद में जिन जिन कथाओं की ओर संकेत है, उन्हें विस्तृत रूप में लल्लूलाल कृत प्रेम सागर में तथा अन्य

पूर्ति करने वाला। सुख निधान=सुखों का भंडार। मौज=दान, बख़शीश। घनी=बहुत अधिक। छनी=क्षण भर में। बपुरा=बेचारा। कहा गनी=क्या गिनती है। भुअंग=(सं० भुजं+ग) सर्प। तनो=बन्द, रस्सी। बनी=पटती है।

भावार्थ—उसको किस बात की कमी है, जिसके मालिक रामजी हैं। वेही रामजी इच्छाओं के प्रेरक (उत्तेजक) और पूरक हैं, जो सुख के भण्डार और अति अधिक दानी हैं। वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष एक क्षण मात्र में दे सकते हैं। मेरी तो गिनती ही क्या है, इन्द्र समान (देवगण) जिनके सेवक हैं! कृपण की दौलत हो कितनी, तिस पर भी मेरी मेरी कहता फिरता है। वह न तो खा सकता है, न खर्चना ही (दूसरों को देना ही) जानता है। वह उसी प्रकार सम्पत्ति को रखता है जैसे सर्प के सिर पर मणि रहती है (न स्वयं खाता है न दूसरे को लेने देता है, पर राम भक्त कैसे होते हैं कि) दुःख और संताप की रस्सी काट कर, आनन्द में निमग्न होकर सदा श्रीरामजी के गुण गाते हैं। सूरदास कहते हैं कि जो सदा राम जी का भजन है उन पर राम जी सदा प्रसन्न रहते हैं (अनुकूल रहते हैं)।

अलंकार—प्रथम चार पंक्तियों में उदात्त, छठवीं में उदाहरण, अन्तिम पंक्ति में सम।

(नोट) पाठक देखें कि सूरदास जी राम और कृष्ण में भेद नहीं मानते, नहीं तो राम शब्द के स्थान में कृष्ण लिखते।

(नोट)—इस पद में बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य है। चूँकि वह गूढ़ है अतः साफ किए देते हैं :—

कृष्ण और राम को लोग बड़ा दानी कहते हैं। कहते हैं कि ये दोनों अकारण दया करते हैं। सुनिये, सुदामा को चारों पदार्थ देकर अयाची कर दिया सो यह तो पुराना मित्र था, गुरु-गृह में कृष्ण के हिस्से के अनेक काम करके कृष्ण को कष्ट नहीं होने देता था। गुरु के मरे पुत्र ला दिये, सो उनसे विद्या पढ़ी थी, रावण को मार कर लंका विभीषण को दी, सो विभीषण भी पहले रामजी को लंका के अनेक भेद बतला कर राम के साथ उपकार कर चुका था। अतः अकारण दयालु कैसे ठहरे? अकारण दयालुता तो मैं तब जानूँ जब मुझपर दया करें। मैं तो इनको महानिठुर समझता हूँ, क्योंकि मैंने कुछ नहीं किया इसलिये ये मेरे ऊपर कृपा नहीं करते, वरन् इतनी निठुराई की कि मेरी आँखें भी हर लीं (जो जीवधारी होने के कारण मुझको मिलना चाहिये) अर्थात् ये लोग देते नहीं वरन हर लेते हैं और यदि कुछ देते भी हैं, तो पहले बहुत बड़ा मेवा लेकर। इस प्रकार खरा खोटा सुनाकर राम-कृष्ण को लांछित करके अपना काम साधने का सूर ने उद्योग किया है।

स्तुत्यानुराग में 'विभीषण' और 'पुरबला' शब्दों में कुछ अनुचित तोड़-मरोड़ भी की है। आगे के पद में इसके लिये माफी चाहते हैं।

११—राग सारंग

कौन गति करिहौ मेरी नाथ।
हौं तो कुटिल कुचील कुदरसन रहत विषय के साथ॥
दिन बीतत माया के लालच कुल कुटुम्ब के हेत।
सारी रैन नींद भरि सोवत जैसे पशु अचेत॥
कागज़ धरनि करै द्रुम लेखनि जल सायर मसि घोर।
लिखैं गनेश जनम भरि मम कृत तऊ दोष नहिं ओर॥
गज गनिका अरु बिप्र अजामिल अगनित अधम उधारे।
अपथै चलि अपराध करे मैं तिनहूँ ते अति भारे॥
लिखि लिखि मम अपराध जनम के चित्रगुप्त अकुलायो।
भृगुऋषि आदि सुनत चकित भये यम सुनि सीस डुलायो॥
परम पुनीत पवित्र कृपानिधि पावन नाम कहायो।
सूर पतित जब सुन्यो बिरद यह तब धीरज मन आयो॥

शब्दार्थ—गति = दुर्दशा। माया = धन। द्रुम = वृक्ष। सायर = सागर। [illegible] ओर = अन्त। ममकृत = मेरे किये दोष। [illegible] दोष नहिं ओर = तब भी मेरे दोषों का अन्त न मिलेगा। [illegible] थके। चित्रगुप्त = धर्मराज के मुंशी। [illegible] ज्ञान में ज्ञान [illegible] [illegible] यमराज ने सिर हिलाया कि [illegible] [illegible] नरक बनवाना पड़ेगा।

क्या। पावन नाम कहायो=ईश्वर का एक नाम पतितपावन भी है। बिरद=सुयश। पुनीत=स्वयं निष्पाप। पवित्र=दूसरों को अपने स्पर्श से निष्पाप करने वाला। पावन=पतित-पावन। अर्थ—सरल है।

(नोट)—१—कागज़ धरनि..... नहिं ओर—महिम्न-वाले 'आसत गिरि समस्यात' वाले श्लोक का भाव है।

२—पुनीत, पवित्र और पावन में पुनरुक्ति नहीं है, ध्यान से समझिये।

३—कुल और कुटुम्ब में भी पुनरुक्ति नहीं है। दोनों शब्दों के अर्थ में जो भेद है उसे समझो।

४—लिखैं गनेश जनम भर—यह हिन्दी की अद्भुत विलक्षणताओं में से एक है कि 'जनम' (जन्म) शब्द का अर्थ होता है। 'जीवन' (जिन्दगी)। जनम भर=आजीवन, जिन्दगी भर।

१२—राग धनाश्री

जनम सिरानो अटकै अटकै
सुत सम्पति गृह राज-मान को फिरो अनत ही भटकै॥
काम-अग्निका रचो मोह की नागा जाय न चटकै।
ता हरि जन न तृपति विषय की रही बाय ही लटकै॥

सब जंजाल हु इन्द्रजाल सम ज्यों बाजीगर नटके।
'सूरदास' सोभा न सोभियत पिय बिहून धन मटके॥

शब्दार्थ—जनम=जीवन। सिरानो=तमाम हुआ। अटके भटके भटके=संसार के झंझटों में फँसे फँसे। राज-मान=राजा के दरबार में प्राप्त सम्मान। अनत=अन्यत्र। जवनिका=चिक या कनात, आड़ की टट्टी। चटके=शीघ्रता पूर्वक। सुमिरि=सुमिर। जंजाल=संसार+बखेड़े। इन्द्रजाल=जादू, इन्द्र की माया। बाजीगर=जादूगर। सोभा न सोभियत=शोभा नहीं पाती। बिहून=विहीन। धन=स्त्री। पिय बिहून धन=विधवा स्त्री। मटके=चटक-मटक, नाज़-नखरे, हाव-भाव।

भावार्थ—सारा जीवन संसारी झंझटों में ही बीत गया। पुत्र, सम्पत्ति, घर, और राजमान के लिये अन्यत्र ही अन्यत्र भटकता फिरा [illegible] ऐसा मजबूत टट्टी लगाई है कि [illegible] हरि भजन हो [illegible]

शोभा हरि भजन में ही है। अभक्त जीव विधवा के समान निराश्रित है।

अलंकार—तीसरी पंक्ति में रूपक, पांचवीं में उपमा, छठी में दृष्टांत।

१३—राग सारंग

छांड़ि मन हरि बिमुखन को संग।
जाके सङ्ग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग॥
कहा भयो पय पान कराये बिष नहिं तजत भुअंग।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निस दिन रहत उमंग॥
कागहिं कहा कपूर खवाए, स्वान न्हवाये गंग।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग॥

शब्दार्थ—हरि बिमुख = अभक्त। भंग = त्रुटि। पय = दूध। भुअंग = सांप। उमंग = उत्साह अरगजा = सुगंधित द्रव्य विशेष जो शरीर में लगाया जाता है। यह केशर, चंदन, कपूरादि को मिलाने से बनता है। खर = गधा। मरकट = बंदर। पाहन = पाषाण, पत्थर। पाहन भेदत = पत्थर में

मारने से बाल उसमें फँसता नहीं। रंगी—(सं० रंग) वाला। निबहत= बचता।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—३, ४, ५, ६ और ७ वीं पंक्तियों में पर्यायोक्ति। अंतिम पंक्ति में वाचक लुप्तोपमा।

(नोट। इसमें षट विधि शरणागत में से "प्रतिकूलस्य वर्जनं" वाला सिद्धान्त कहा गया है।)

१४—राग देवगंधार

जाको मनमोहन अंग करै।
ताको केस खसै नहिं सिर तें जो जग बैर परै॥
हिरनकसिपु परहारि थक्यो प्रहलाद न नेकु डरै।
अजहुँ सुत उत्तानपाद को राज करत न टरै॥
राखी लाज द्रुपदतनया की कुरुपति चीर हरै।
दुर्योधन को मान भंग करि बसन प्रवाह भरै॥
विप्रभगत नृप अन्धकूप दियो [illegible] पाढ़पेद [illegible]।
दीनदयालु कृपालु दयानिधि काप कहो परै॥

जब सुरपति कोप्यौ ब्रज ऊपर कहि हू कछु न सरै।
राखे ब्रजजन नँद के लाला गिरिधर बिरद धरै॥
जाको बिरद है गर्वप्रहारी सो कैसे बिसरै।
'सूरदास' भगवंत भजन करि, सरन गहे उधरै॥

शब्दार्थ—अंग करै=अपना सेवक स्वीकार कर लेते हैं। बार बाँको नहि=बाल भी टूट कर नहीं गिरता। बैर परै=शत्रुता पर उतारू हो। पचहारि थक्यौ=मारते मारते थक गया। सुत उत्तानपाद कौ=ध्रुव। द्रुपद तनया=द्रौपदी। कुरुपति=दुर्योधन। पढ़िवेद=वेदपाठी ब्रह्मचारी होकर। छुवै=छुवे। कापै कही परै=किससे कहा जा सकता है, उसकी प्रशंसा कौन कर सकता है। कहि हू कछु न सरै=कुछ कहा नहीं जाता। राखे=रक्षा की। बिरद=नाम (प्रसिद्धि)।

भावार्थ—जिनको श्रीकृष्ण जी अपनी सेवा में स्वीकार कर लेते हैं, फिर यदि सारा संसार उनसे शत्रुता करने पर उतारू हो तो उनका सिर से एक बाल भी नहीं टूटता। [illegible] मारते मारते थक [illegible]

अपथ सकल चलि चाहि चहूँ दिसि भ्रम उघटत मतिमंद।
थकित होत रथ चक्रहीन ज्यों निरखि करम गुन फंद॥
पौरुष रहित अजित-इन्द्रियबस, ज्यों गज पंक परयो।
विषयासक्त नटी के कपि ज्यों, जोइ कह्यो सु कर्‌यो॥
अपने ही अभिमान दोष तें रविहिं उलूक न मानत।
अतिसय सुकृत रहित अघ ब्याकुल वृथा स्रमित रज छानत॥
सुनि त्रैताप-हरन करुनामय संतत दीन-दयाल।
'सूर' कुटिल राखौ सरनाई ब्याकुल यहि कलिकाल॥

शब्दार्थ—बियो=दूसरा। हौं=(सं० अहम्) मैं। तृषा-तुर=प्यास से व्याकुल। चाहि=देखकर। उघटत=उघारता है, पुनः प्रगट करता है। चक्रहीन=पहिया रहित। अजित=प्रबल। विषयासक्त—विषय स्वाद में लीन। रज छानना=धूल छानना, व्यर्थ काम करना। त्रैताप=दैहिक दैविक भौतिक दुःख। करम, गुन=([illegible] यहाँ अर्थ होगा, कुकर्म और अवगुण।

भावार्थ—हे कृष्ण ! यदि मैं (तुम्हारे समान [illegible]) कोई दूसरा मालिक पाऊँ तो बार बार तुमसे विनती न करूँ। [illegible] दूसरा [illegible] हो नहीं, इसलिए आपसे [illegible] करता हूँ। [illegible] वृक्ष, पशु, नाग, [illegible] भावना कर चुका। मैं [illegible] किसी से मेरा भ्रम न छूटा।

१६—राग कान्हरो

जो पै तुमहीं बिरद बिसारो।

तो कहो कहाँ जाऊँ करुनामय कृपन करम को मारो॥
दीनदयालु पतितपावन प्रभु बेद बखानत सारो।
सुनियत कथा पुराननि गनिका, ब्याध, अजामिल तारो॥
राग,द्वेष,बिधि,अबिधि असुचि,सुचिजिनप्रभुजिनैसँभारो।
कियो न कहूँ बिलंब कृपानिधि सादर सोच निवारो॥
अगनित गुन हरि नाम तुम्हारे अजौं अपन पन धारो।
'सूरदास' प्रभु चितवत काहैं न करत करत स्रम हारो॥

शब्दार्थ—बिरद = बड़ नामा, प्रसिद्धि। कृपन करम = [illegible] मय कर्म। राग = प्रेम। द्वेष = दुर्भाव। बिधि = [illegible] कर्म का [illegible]

[illegible]

जाग जग्य जप तप नहिं कीनो बेद बिमल नहिं भाख्यो
अति रसलुब्ध स्वान जुठनि ज्यों अनतै ही मन राख्यो
जिहिं जिहिं जोनि फिरों संकट बस तिहिं तिहिं यहै कमायो
काम क्रोध मद लाभ ग्रसित है बिषै परम बिष खायो
अखिल अनन्त दयालु दयानिधि अघमोचन सुखरासि
भजन प्रताप नाहिनै जान्यौं बँध्यो काल की फाँसि ।
तुम सरबग्य सबै बिधि समरथ असरन-सरन मुरारि
मोह समुद्र 'सूर' बूड़त है लीजै भुजा पसारि ॥

शब्दार्थ—अवगुण = दोष । बिचारो = चित्त में धरो रबिसुत = यमराज । त्रासनिवारो = डर छोड़ा दीजिये, अभय कर दीजिये । गिरिपति = हिमालय । मसि = स्याही । सुरतरु = कल्प वृक्ष की लेखनी । मिति = हद, अन्त । रसलुब्ध = रसा स्वादन का लोभी । स्वान = कुत्ता । परम बिष = बड़ा विषैला जहर । अखिल = सर्वत्र व्यापी । अघमोचन = पापों से छोड़ाने वाले । नाहिनै = नहीं है ।

पद — स्मरण का है

अलंकार — इस पंक्ति में उदाहरण । 'मोह समुद्र' में रूपक ।

(नोट) पंक्ति ३ व ४ में वही 'असितगिरिसमस्यात्' का भाव है

२०—राग सारंग

प्रभु हौं सब पतितन कौ राजा।
पर निन्दा मुख पूरि रह्यो, जग यह निसान नित बाजा॥
तृस्ना देस रु सुभट मनोरथ, इन्द्रिय खड्ग हमारे।
मंत्री काम कुमत दैबे कौ, क्रोध रहत प्रतिहारे॥
गज अहँकार चढ़यौ दिग-विजयी, लोभ छत्र धरि सीस।
फौज असत-संगति की मेरी ऐसौ हौं मैं ईस॥
मोह मदै बन्दी गुन गावत, मागध दोष अपार।
'सूर' पाप कौ गढ़ दृढ़ कीने मुहकम लाइ किँवार॥

शब्दार्थ—हौं = मैं। पतित = नीच कर्म करनेवाला। निसान = नौबत, नगाड़ा। तृसना = (सं० तृष्णा) अतृप्त इच्छा। कुमत = बुरी सलाह। प्रतिहार = द्वारपाल। असत-संगति = बुरे लोगों का साथ। ईस = राजा। मोह मदै = मोह और मद हो [illegible] बखानने [illegible] बाढ़े [illegible]

[illegible]

है। काम ही कुमंत्र देने के लिये मेरा मंत्री है और क्रोध मेरा द्वारपाल है। अहंकार मेरा हाथी है, जिस पर चढ़ कर मैं दिग्विजय को निकलता हूँ, और लोभ का छत्र सिर पर धारण किए रहता हूँ। दुष्ट संगति की मेरी सेना है, मैं ऐसा राजा हूँ। मोह और मद ही बंदीजन हैं जो मेरी गुणावली गाते हैं, और मेरे अगणित दोष ही मागध हैं (जो वंश की प्रशंसा करते हैं)। सूरदास कहते हैं कि मज़बूत फाटक लगा कर मैंने पाप का किला बहुत दृढ़ कर लिया है।

अलंकार—सांग रुपक।

(नोट) इस पद में 'कार्पण्य' वर्णन का सिद्धान्त निबाहा गया है।

२१—राग केदारा

बन्दौं चरन सरोज तुम्हारे

जे पदपदुम सदा सिव के धन, सिंधुसुता उर तैं नहिं टारे॥
जे पदपदुम परसि भई पावन, सुरसरि दरस कटत अघ भारे।
जे पदपदुम परसि ऋषिपतनी, बलि नृग, ब्याध पतित बहु तारे॥
जे पदपदुम रमत वृन्दावन अहि सिर धरि अगनित रिपु मारे।
जे पदपदुम परसि ब्रजभामिनि सरबसु दै सुत सदन बिसारे॥

जे पदपदुम रमत पांडव दल, दूत भये सब काज सँवारे।
'सूरदास' तेई पदपंकज त्रिविध ताप दुखहरन हमारे॥

शब्दार्थ—सिंधुसुता=लक्ष्मी। ऋषि पत्नी=अहल्या। अहि=कालीनाग। दवाग=दावानल। त्रिविध ताप=दैहिक, दैविक, भौतिक दुःख। ब्रज भामिनि=ब्रज की गोपियां। सदन=घर।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—चरण सरोज, पद पदुम, पद पंकज इत्यादि में 'रूपक'

(नोट) १—इष्टदेव के चरणों की महिमा (गुण वर्णन) 'गोस्वामी वर्णन' में है

२ तुलसीदास जी ने भी चरण वन्दना में विनय पत्रिका में एक पद बड़ा ही सुन्दर लिखा है,—

कबहुँ 'देखाइहौ हरि चरन'

लोभ लागि लै डोलत दरदर नाना स्वांग करावै।
तुमसों कपट करावत प्रभु जी मेरी बुद्धि भ्रमावै॥
मन अभिलाष तरंगनि करि २ मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपने में ज्यों सम्पति त्यों दिखाय बौरावै॥
महामोहिनी मोह आतमा मन अघ माहिं लगावै।
ज्यों दूती पर वधू भोरि कै लै पर पुरुष मिलावै॥
मेरे तो तुम ही पति तुम गति तुम समान को पावै।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु को मो दुखन सिरावै॥

शब्दार्थ—लकुट=लकड़ी, छड़ी। (नोट) कथकादि किसी को नाचना सिखाते समय एक लकड़ी के इशारे से गति तालादि पर आ जाने को इंगित करते हैं, जैसे आज कल अँगरेज़ी बैंड बजवाते समय बैंडमास्टर एक लकड़ी से इशारा करता जाता है। लोभ लागि=लाभ से प्रेरित होकर। लै डोलत=लिए लिए फिरती है। दरदर=(फा०) द्वार द्वार। तरंग=उमग। मन करि करि=मन में इच्छुओं की उमंग उठा कर। मिथ्या निसा जगावै=व्यर्थ रात्रि भर जगाती है। बौरावै=बहकाता है। मोह आतमा=आत्मा को मोह में डालता है। पर बधू=पर स्त्री। भोरि कै=भोरा कर, झूठा लालच दिखाकर, धोखा देकर। सिरावै=खतम करैं, मिटावै। पति=मालिक। गति=अन्तिम ध्येय।

(नोट)— मेरे तो तुमही पति—भक्त का एक पद भी

(सं० भुज=टेढ़ा, गम=चलना) टेढ़ा चलनेवाला अर्थात् सांप। पैसे=पैठे । तक्यौं न अवधि=खाने पीने इत्यादि समय नहीं देखते अर्थात् हर समय इन्द्रियों की तृप्ति में लगे रहते हैं। दारा=स्त्री। उन्हें भेद कहो कैसे=उन्हें समझने की शक्ति नहीं (बिग्गु, घुग्घू, बन बिलाल, सर्प इत्यादि भूख लगने पर अपने ही बच्चों को खा डालते। ऊँट, भैंसे, शूकर, कूकर इत्यादि अविचारी विषयी होते हैं)।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—उदाहरण।

(नोट)—इस पद में भक्ति दृढ़ाने का उपदेश है। उदाहरण बहुत ज़ोरदार है।

२४—राग मलार

माधव जू। यह मेरी इक गाइ।
अब आजु तें आप आगे दई लै आइये चराइ॥
है अति हरहाई हटकत हू बहुत अमारग जाति।
फिरत बेद बन ऊख उखारत सब दिन अरु सब राति॥
हित कै मिलै लेहु गोकुलपति अपने गोधन माँह।
सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँह॥

स्वामी (कृष्णजी) अब मेरा जन्म न हो (तो अच्छा है) अतः हे यदुराय ! मेरी इस प्रवृत्ति को—" मैं मेरी तेरी " की भावना को—छोड़ा लो।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

(नोट)—आत्म-निवेदन भक्ति का वर्णन है।

२५—राग धनाश्री

माधव ! मन मरजाद तजी।

ज्यों गज मत्त जानि, हरि तुमसों बात बिचारि सजी॥
माथे नहीं महावत सतगुरु अंकुस ग्यान टुट्यो।
धावै अघ अवनी अति आतुर साँकर सुसँग छुट्यो॥
इन्द्री जूथ संग लिये बिहरत, तृष्ना कानन माहैं।
क्रोध सोच जल सों रति मानी काम मच्छ हित जाहीं॥
और अधार नाहिं कछु सकुचत, स्रम गहि गुहा रहै।
सूर स्याम महाराज, करुनामय अब नहिं बिरद गहै।

शब्दार्थ—मरजाद = सीमा, हद। साँकर = शृङ्खल, जंजीर। जूथ = समूह (हाथियों का)। माहं = (मध्ये) बीच में। जाहिं = जिसका।

' संह' भी है। अंतिम पंक्ति में काकु बक्रोक्ति है।

(नोट) इस पद में सखा कार्पण्य वर्णन है।

२६—राग विलावल

माधो ! वै भुज कहाँ दुराये।

जिनहिं भुजनि गोवर्द्धन धारयो सुरपति गर्व नसाये॥
जिनहिं भुजनि काली को नाथ्यो कमलनाल लै आये।
जिनहिं भुजनि प्रहलाद उबारयो हिरन्याच्छ को घाये॥
जिनहिं भुजनि दाँवरी बँधाये जमला मुकति पठाये।
जिनहिं भुजनि गजदंत उपारयो मथुरा कंस ढहाये॥
जिनही भुजनि अघासुर मारयो गोसुत गाय मिलाये।
तिहिं भुज की बलि जाय 'सूर' जिन तिनका तोरि दिखाये॥

शब्दार्थ—दुराये=छिपाये। सुरपति=इन्द्र। नसाये=नष्ट किया। कमल नाल=नाल समेत कमल पुष्प। दाँवरी=रस्सी। जमला—जमलार्जुन (अर्जुन वृक्ष का जोड़ा, दो अर्जुनवृक्ष)। मुकति मुक्ति गजदंत—कुवलया गज के दांत। उपारयो उखाड़े ढहाये सिंहासन से गिराया। मार डाला। जिन तिनका तोरि दिखाए—जिन हाथों ने जरासंध और भीमसेन के युद्ध के समय एक तिनके को चीर कर भीम

बहुत बार जल थल जग जायो भ्रमि आयो दिन देव ।
औगुन की कछु सकुच न सङ्का परि आई यह टेव ॥
अब अनखाय कहौ घर अपने राखो बाँधि बिचारि ।
'सूर' स्वान के पालनहारे लावत हैं दिन गारि ॥

शब्दार्थ—बेकाज=व्यर्थ, किसी काम का नहीं । या देही के काज=जिनके फल से यह देह मिली है । वाज न आयो (फारसी मुहावरा है) छोड़ा नहीं, त्यागा नहीं । दिन=प्रति दिन, सदैव । देव=हे इष्टदेव । औगुन=(अर्द्धतत्सम) अवगुण, दोष पाप सकुच=लज्जा । टेव=आदत, स्वभाव । अनखाय=क्रुद्ध होकर, बुरा मान कर । लावत हैं दिन गारि=प्रति दिन तुम्हें गालियां दिलवाता हैं । अपने घर बाँधि रखो=सालोक्य मुक्ति दो (बड़ा ही सुन्दर व्यंग है) ।

भावार्थ– हे माधव ! मुझे काहे का लाज है ? मैं तो जन्म जन्म से ही ऐसा अहंकारी और निकम्मा जीव हूँ । इस देह को (मनुष्य देह को) पाने के [illegible] करोड़ों कर्म किये पर अब यह देह पाकर [illegible] छोड़ा । हे देव [illegible] अनेक योनियों में भ्रमण कर [illegible] अब [illegible] से न [illegible] क्या [illegible] पड़ [illegible] सूरदास [illegible] कुत्ता का पालनेवाले कहकर ' यह कुत्ता तुम्हें रात गालियाँ

उतारो=तारो, मुक्त करो। नहिं पन जात टरो=नहीं तो आपकी समदरशी होने की प्रतिज्ञा भंग होने चाहती है।

भावार्थ—सरलही है।

(नोट)—माया ईश न आपु कहँ जान कहिय सो जीव।
बंध मोक्ष प्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव॥

१—जो न तो माया को जानै, न ईश्वर ही को जान सकै और न अपनी ही असलियत को समझ सकै उसे 'जीव' कहते हैं।

२—जो बन्धन में डालनेवाला अथवा बन्धन से मुक्त कर देनेवाला है, सब से परे है (सर्व शक्तिमान है) और जो माया का प्रेरक है उसे ईश्वर कहते हैं।

३—सब दार्शनिक झगड़ों को छोड़ कर, सूरदास जी इस पद में समदर्शी प्रतिज्ञा को आधार बनाकर भगवान की दया को उत्तेजित करके मुक्ति माँगते हैं। इस पद में यह सिद्धान्त पुष्ट किया गया है कि जीव निज बल से कुछ नहीं कर सकता और ईश्वर सर्व शक्तिमान होने से सब कुछ कर सकता है।

२६—राग देवगंधारी

मोहिं प्रभु तुम सों होड़ परी।
ना जानों करिहौ जु कहा तुम नागर नवल हरी॥
पतित समूहनि उद्धरिबे को तुम जिय जक पकरी।
मैं जु राजिव नैननि दुरि गयो पाप-पहार दरी॥
एक अधार साधु संगति को रचि पचि कै सँचरी।
भई न सोचि सोचि जिय राखी अपनी धरनि धरी॥
मेरी मुकति बिचारत हौ प्रभु पूँछत पहर घरी।
स्रम तें तुम्हैं पसीनो ऐहै कत यह जकनि करी॥
'सूरदास' बिनती कहा बिनवै दोसहि देह भरी।
अपनो बिरद सँभारहुगे तब यामें सब निनुरी॥

शब्दार्थ—होड़परी = बाज़ी लगी है (मैं अधिक पाप कर सकता हूँ कि तुम महा पापी को भी तार सकते हो, यह बातें लगी हैं, इसे होड़ जानना है)। जक पकरी = हठ की है। दरी = गुफा। रचि पचि कै = खूब मन लगा कर। सँचरी = [illegible]

जान पड़ता कि आप क्या करेंगे (आप बालक हैं, मैं बुड्ढा पुराना खुर्राट पापी हूँ)। पापियों के झुंडों को तारने की हठ तुमने की है। परंतु मैं (ऐसा चतुर हूँ कि) आप के कमल लोचनों की नजर बचाकर पाप पहार की कंदरा में छिप बैठा हूँ। तरने का एक मात्र आधार जो साधु संगति है, जिसमें मैं खूब अच्छी तरह से रहता था, सो उस संबन्ध में भी मन सोची बात न हुई, यद्यपि मैं ने उसे खूब मज़बूती से पकड़ा था (अर्थात् साधु संगति भी छूट गई)। आप मेरी मुक्ति का विचार कर रहे हैं और पूछते हो कि किस समय तुझे तार दूं (जब कहै तब मुक्त कर दूं) पर मैं कहता हूँ कि महाराज! मेरे तारने में आपको इतना परिश्रम करना पड़ैगा कि पसीना आ जायगा, अतः क्यों ऐसा हठ करते हो। सूरदास कातनी विनती करे (अपनी मुक्ति के लिये तुमसे कैसे कहूं। क्योंकि मेरा सारा शरीर दोषों से ही भरा है। हाँ यदि आप अपने विरद को पकड़ लो (विरद की लज्जा रखना चाहोगे) तो यह खल निस्तार हो जायगा (अर्थात् मुझे मुक्त कर सकोगे)।

अलंकार—पाप पहाड़ दरी में रूपक

(नोट—प्रभु की करुणा को उत्तेजित करने का उत्तम

———

३०—राग रामकली

सरन गये को को न उबार्‍यो ?
जब जब भीर परी भगतन पै चक्र सुदरसन तहाँ सँभार्‍यो ॥
भयो प्रसाद जु अम्बरीष पै दुरवासा को क्रोध निवार्‍यो ।
ग्वालन हेतु धर्‍यो गोवर्धन प्रगट इन्द्र को गर्व प्रहार्‍यो ॥
करी कृपा प्रहलाद भगत पै खंभ फारि उर नखन बिदार्‍यो ।
नरहरि रूप धर्‍यो करुना करि छिनक माँहि हिरनाकुस मार्‍यो ॥
ग्राह ग्रसित गज को जल बूड़त नाम लेत तुरतै दुख टार्‍यो ।
'सूर' स्याम बिनु और करै को रंगभूमि में कंस पछार्‍यो ॥

शब्दार्थ—को को न उबार्‍यो ?=किस किस को नहीं बचाया अर्थात् सब को बचाया है। भीर=संकट। प्रसाद=प्रसन्नता। गर्व प्रहार्‍यो=घमंड तोड़ दिया। नखन=नाखूनों से बिदार्‍यो=फाड़ डाला। रंगभूमि=तमाशा देखने की जगह।

भावार्थ—सरल है।

नोट—अम्बरीष, प्रहलाद, गज इत्यादि की कथाएँ [illegible]

४—राग धनाश्री

सबै दिन गये विषय के हेतु।

देखत ही आपुन पौ खोयो केस भये सब सेत॥
रूँध्यो स्वाँस मुख बैन न आवत चंद्रा लगी सँकेत।
तजि गंगोदक पिये कूपजल पूजन गाड़े प्रेत॥
करि प्रमाद गोबिन्द बिसारे बूड़्यो सबनि समेत।
'सूरदास' कछु खरचु न लागत कृस्न सुमिरि किन लेत॥

शब्दार्थ—विषय=इंद्रियसुख। हेत=वास्ते। आपुनपौ=अपनापन (अपना मनुष्यत्व)। चंद्रा लगी=मरने का समय आ गया (ज्योतिष मत से मरते समय चंद्रमा घातक होता है, इसे ही 'चंद्रालगना' बोलते हैं) सँकेत=कष्टदायक। गंगोदक=(सं० गंगा+उदक) गंगाजल। गाड़े प्रेत=कबरों में गड़े मुरदे। प्रमाद=घमंडी, भूल। किन सुमिरि लेत=क्यों नहीं भज लेता। खरच=व्यय, धन।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—'तजि गंगोदक पिये कूपजल' में ललित अलंकार है। भाव यह है कि 'हरिभजन छोड़ कर विषय में लगा रहा' इस भाव का प्रतिबिम्ब इन शब्दों में कहा गया है

३२—राग कान्हरो

सोइ रसना जो हरिगुन गावै।
नैननि की छबि यहै, चतुर सोइ जो मुकुंद दरसन हित धावै॥
निर्मल चित तो, सोई साँचो, कृष्ण बिना जिहिं अपर न भावै।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई हरिजस नितप्रति स्रवननि ल्यावै॥
कर तेई जु स्याम कौं सेवैं चरननि चलि वृन्दावन जावैं।
'सूरदास' है बलि बलि ताकी जो सन्तन सों प्रीति बढ़ावै॥

शब्दार्थ—मुकुंद=(मुक्ति देने वाले) भगवान कृष्ण। अपर—(सं० अपर) कोई दूसरा। भावै=अच्छा लगे। अधिकाई=बड़ाई। तेई=वेही।

भावार्थ—बहुत सरल है।

नोट—इस पद में इन्द्रियों का साफल्य वर्णन है। पिछले पद में इन्द्रियसुख द्वारा नर शरीर का व्यर्थ होना कहा गया है। इसमें [illegible] द्वारा नर शरीर की सफलता वर्णित है।

[illegible]

३२—राग गौरी

हरिदासनि की सदा बड़ाई।

अंबरीष हित द्विज दुरवासा चक्र छाँड़ि, कै कृत्य पराई॥
दानव दुष्ट असुर को बालक ता हित सब मरजादा टाई।
मगधराज कुंती के सुत हित रथ चढ़ि आपुन भीम लड़ाई॥
सिव ब्रह्मा जाको वर दीनों असुर सबनि को सीस कढ़ाई।
हरिपद कमल प्रताप तेज तें ध्रुव पदवी लै सिखर चढ़ाई॥
अजामील गनिकारत द्विजसुत सुत सुमिरत जम त्रास हटाई।
गज दुख जानि तबहिं उठि धाये ग्राह मुखनि ते विपति छोड़ाई॥
कौरव राज-वंस रचना करि द्रौपदि की सोभा विस्तराई।
आपुन बिदुर सदन प्रभु धारे सदा सुभाव साधु सुखदाई॥
सकल लोक कीरति भरि गाई हरि जन प्रेम निसान उड़ाई।
कहँ लौं कहौं कृपासागर की सूरदास' साहिब सुखदाई॥

शब्दार्थ—कै कृत्य = कृत्यर (पिशाचर)। दानव दुष्ट असुर को बालक = राजा बलि। मरजादा टाई = प्रतिज्ञा छोड़ कर भिक्षा माँगी। कुंती के सुत = अर्जुन। सिव . वर दीनों = [illegible]

दूत बन कर पांडवों से संधि कराने के लिये, दुर्योधन के पास गए थे, तब दुर्योधन ने राज मार्ग और तोरणादि सजाकर उनका सम्मान प्रदर्शित किया था, परंतु कृष्ण ने दुर्योधन के यहाँ भोजन न करके विदुर के यहाँ भोजन किये थे। हरि=कृष्ण। हरिजन प्रेम निशान उड़ाई=श्रीकृष्ण भगवान सदा अपने दास के प्रेम की ही पताका उड़ाते हैं अर्थात अपने दास की प्रतिष्ठा बढ़ाकर उसका सुयश फैलाते हैं। सूरदास नाहिन सुघराई=सूरदास में भी कोई अच्छा गुण नहीं है, पर इस दास को भी कृष्ण जी ने जग में प्रतिष्ठा दिलाई ही थी, अतः ऐसा कृपा सागर कौन है (कोई नहीं है)।

अलंकार—पंक्ति ३, ४, में पर्यायोक्ति है।

३४—राग सारंग

हरि हौं सब पतितन को नायक।

को करि सकै बराबरि मेरी और नहीं कोउ लायक॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

यह सुनि जहाँ तहाँ तें सिमिटे आइ होइ इक ठौर।
अब की तौ अपनी लै आयौं, बेर बहुरि की और॥
होड़ाहोड़ी मन हुलास करि किये पाप भरि पेट।
सबै पतित पाँयन तर डारौं इहै हमारी भेंट॥
बहुत भरोसो जानि तुम्हारो अघ कीन्हे भरि भाँड़ो।
लीजै नाथ निबेरि तुरंतहि 'सूर' पतित को टाँड़ो॥

शब्दार्थ—नायक=सरदार, नेता। पटो=पट्टा, अधिकार-पत्र। ब्यौपारी=सौदागर। सौंटिदै=मज़बूती से बांधकर। सिमिटे=मिले जुले। अब की तौ अपनी लै आयौं=अब की बारी तो अपनी ही वस्तुएं (सौदा) लाया हूँ। बेर बहुरि की और=दूसरी बार और भी सौदागरों की टोली लिया लाऊँगा। होड़ा होड़ी=दूसरों की स्पर्द्धा करके। भरि पेट=खूब छक कर, इच्छा भर। भेंट=नज़राना। भाँड़ो भरि=मटकाभर (बहुत अधिक) निबेरि लीजै=छांट कर पसंद कर लीजिये। पतित=पापी। टाँड़ो=बनजारा की बरदी।

(नोट)—पहाड़ी देशों में बैलों पर सौदा लाद कर बेचने को ले जाते हैं, एक महाजन सैकड़ों बैल लादता है। इसी समूह को 'टाँड़ा' कहते हैं। उस समूह के नेता को 'नायक' कहते हैं। इस दल के नायक के आज्ञा-पत्र के बल पर वह यह काम करता है। उस आज्ञा-पत्र को 'पट्टा' कहते हैं। इसीका [illegible] इस पद में है

बाल-लीला

१—राग रामकली

हौं एक बात नई सुनि आई।
महरि असोदा ढोटा जायो घर घर होत बधाई॥
द्वारे भीर गोप गोपिन की महिमा बरनि न जाई।
अति आनँद होत गोकुल में रतन भूमि सब छाई॥
नाचत तरुन वृद्ध अरु बालक गोरस कीच मचाई।
'सूरदास' स्वामी सुख-सागर सुंदर स्याम कन्हाई॥

शब्दार्थ—हौं = मैं। बात = खबर। महरि = (आदर सूचक शब्द) श्रीमती, महाशया। ढोटा = पुत्र। महिमा = अधिकता। रतन भूमि सब छाई = इतने हीरे मोती लुटाए गए हैं कि वे ...ज सारी पृथ्वी पर छितरे पड़े हैं। तरुन = जवान। गोरस = दही।

छंद—सरसी है।

अलंकार—रूपक (कमल और मधु द्वारा, गोरस कंज लगाई में)

२—राग रामकली

हौं सखि नई चाह इक पाई।

ऐसे दिनन नंद के सुनियत उपज्यो पूत कन्हाई॥
बाजत पनव निसान पंचविधि रुंज, मुरज, सहनाई।
महर महरि ब्रज हाट लुटावत आनँद उर न समाई॥
चलौं, सखी हमहूँ मिलि जैये बेगि करौ अतुराई।
कोउ भूषन पहिर्यो कोउ पहिरति कोउ वैसेहि उठि धाई॥
कंचन थार दूब दधि रोचन गावत चलीं बधाई।
भाँति भाँति बनि चलीं जुवतिगन यह उपमा कोउ नहिं पाई॥
अमर विमान चढ़े नभ देखत जय धुनि सबद सुनाई।
'सूरदास' प्रभु भगत हेतु हित, दुष्टन के दुखदाई॥

शब्दार्थ—चाह=खबर, समाचार। ऐसे दिनन=बुढ़ापे में। पनव=ढोल। निसान=नगाड़े। पंचविधि=पांच मंगल वाद्य (तंत्री, ताल, झांझ, नगारा और तुरही)। रुंज=झाँझ। मुरज=पखावज। सहनाई—फूँक कर बजाया जानेवाला एक

बाजा (काशी की शहनाई बहुत प्रसिद्ध है)। हाट लुटावत= बाजार लुटवाते हैं (यह भी दान और बख्शिश का एक ढंग है कि गरीबों द्वारा बाज़ार लुटवा दी, जिसको जो माया लूट ले गया, फिर लुटवाने वाले की ओर से व्यापारियों को दाम भर दिया गया)। वेगि करौ अतुराई=खूब जल्दी करो, अति शीघ्र चलो। दधि=दही। रोचन रोरी (पीसी हुई हल्दी)। मोपै= मुझसे, मुझको । अमर=देवता । जयधुनि=जय-जयकार की ध्वनि। हेतु हित=भलाई के लिये।

(नोट)—मंगल समय में जैसे पांच प्रकार के बाजे बजते हैं, वैसे ही पंचध्वनि भी होती है—वेदध्वनि, बन्दीध्वनि, जयध्वनि शंखध्वनि और निशानध्वनि। यहां पंच शब्द की तो विवेचना स्वयं कवि ने कर दी है—नाम लिख दिये हैं। परन्तु पंचध्वनि को केवल जयध्वनि कहकर सूचित किया है। सुन्दर स्वाभाविक वर्णन है।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—"भाँति भाँति ·······आई" । इस कथन में 'धर्मोपमानवाचक लुप्ता उपमा है।

३—राग धनाश्री

आजु नन्द के द्वारे भीर।
एक आवत एक जात विदा ह्वै एक ठाढ़े मन्दिर के तीर॥
कोउ केसर कोउ तिलक बनावत कोऊ पहिरत कंचुक चीर।
एकन को दै दान समरपत एकन को पहिरावत चीर॥
एकन को भूषन पाटंबर एकन को जु देत नग हीर।
एकन को पुहुपन की माला एकन को चन्दन घसि धीर॥
एकन को तुलसी की माला एकन को राखत दै धीर।
'सूरस्याम' घनस्याम सनेही धन्य जसोदा पुन्य सरीर॥

शब्दार्थ—भीर=जमाव। तीर=एक ओर, निकट। कंचुक=कुरता, अँगरखा इत्यादि चीर—चीरा, पगड़ी। समरपत=देते हैं। भूषन=गहने। पाटंबर=(सं० पाट+अंबर) रेशमी कपड़ा। नग=रत्न। हीर=हीरा। पुहुप=पुष्प, फूल।

नोट—बड़ाही स्वाभाविक वर्णन है।

भावार्थ—सरल ही है।

४—राग धनाश्री

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै॥

मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहें न बेगि सी आवै तोको कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि रहि करि करि सैन बतावै॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ सो नँदभामिनि पावै॥

शब्दार्थ—पालना=बच्चों का झूला। हलरावै=हाथ में लेकर हिलाना। दुलराइ=प्यार करके। मल्हावै (सं० मल्ह=गोस्तन) स्तन से लगाना, दूध पिलाना। निंदरिया=निद्रा। बेगिहीं=जल्दी से। इहि अंतर=इसी बीच में, इतने में। अकुलाइ उठे=चौंक पड़े। नन्द भामिनि=नन्द की स्त्री, यशोदा।

भावार्थ—सरल है।

(नोट)—अधर फरकावै, अकुलाइ उठे—ये दोनों बातें छोटे बच्चों की प्राकृतिक क्रियाएं हैं। बच्चे और माता की प्रकृति का बड़ा ही सुंदर स्वाभाविक वर्णन है।

अलंकार—अभिनय मात्र में सम्बन्धातिशयोक्ति।

५—राग धनाश्री

[illegible]
[illegible]

कान्है लै जसुमति कोरा तें रुचि करि कंठ लगाई।
तब यह देह धरी जोजन लौं स्याम रहे लपटाई॥
बड़े भाग हैं नन्द महर के बड़ भागिन नँदरानी।
'सूर' स्याम उर ऊपर पाए यह सब घर घर जानी॥

शब्दार्थ—विपरीत= उल्टी बात (बच्चे को मारने आई थी सो आपही मारी गई)। कपट हेत क्यों सहै दई=कपट की प्रीति ईश्वर कैसे सहन कर सकता है। कपटमय प्रेम (भक्ति) ईश्वर को नहीं भाता। कोरा=(सं० क्रोड़) गोद। जोजन=चार कोस की लम्बाई। उर ऊपर पाए=पूतना की छाती (खेलते) पाए गए। घर घर जानी=घर घर में खबर फैल गई।

नोट—यह पद 'पूतनावध' लीला का है।

अर्थ—सरल है।

६—राग बिलावल

चरन गहे अँगुठा मुख मेलत
नंद घरनि गावति हलरावति [illegible] [illegible] खेलत॥
जो चरनारविंद श्रीभूषन [illegible] टारति
देखौं धौं का रस चरनन मैं [illegible] आरति॥

आ चरनारबिंद के रस को सुर नर करत बिवाद।
यह रस तो है मोको दुरलभ ताते लेत सवाद॥
उछलत सिंधु, धराधर काँप्यो, कमठपीठि अकुलाइ।
सेस सहसफन डोलन लागे हरि पीवत जब पाइ॥
बढ़यो वृच्छ बट, सुर अकुलाने गगन भयो उतपात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आघात॥
करुना करी छाँड़ि पगु दीनो जानि सुरन मन संस।
'सूरदास' प्रभु असुर निकंदन दुष्टन के उर गंस॥

शब्दार्थ—अँगुठा=पैर का अँगूठा। नन्द घरनि=यशोदा। श्रीभूषन=लक्ष्मी के भूषण हैं। मेलत=डालते हैं। करि आरनि=बड़े शौक से। धराधर=पर्वत (मंदराचल)। बृच्छ-बट=अक्षयवट। आघात—गर्जन। संस=भय। गंस=गाँसी। दुष्टन के उर गंस=दुष्टों के हृदय में गाँसी समान चुभनेवाले।

नोट)—इस पद को समझने के लिये पहले मारकंडेय का [illegible] प्रसंग पढ़ लेना चाहिये। एक समय मारकंडेय मुनि [illegible] भगवान से यह वरदान माँगा था कि मुझे [illegible] दिखलाइये। भगवान ने (मायाकृत) प्रलय का [illegible] किया। उस समय सब जलही जल था। तब [illegible] तैरते तैरते वह [illegible] देखा कि (प्रयाग अक्षयवट) [illegible] के एक पत्र पर बालमुकुन्द रूप से भगवान लेटे हैं और [illegible] पैर का अँगूठा पी रहे हैं। रक्षा के लिये विनय की

और भगवान ने यह दृश्य समेट लिया। इस अवतार में जब श्रीकृष्ण अँगूठा पीने लगे, तब सब को भय हुआ कि पुनः वही प्रलय उपस्थित होगी क्या ?

भावार्थ—पैर पकड़ कर श्रीकृष्ण जी अपना अँगूठा मुख में डाल रहे हैं। कभी तो यशोदा गाती है, उन्हें गोदी में लेकर हिलाती है, कभी किलक किलक कर वे पालने पर खेलते हैं। (श्रीकृष्ण किस विचार से पैर का अँगूठा मुख में डालते हैं) जो चरण लक्ष्मी के भूषण हैं, जिन्हें लक्ष्मी सदा अपने हृदय से लगाए रहती हैं, उन चरणों में क्या रस है, ज़रा मैं भी तो देखूँ, इस विचार से बड़े शौक से अँगूठा मुख में डालते हैं। जिस चरण के रस के लिये सुर नर मुनि झगड़ते हैं, वह रस (अन्य रूप से, बालरूप को छोड़ कर) मुझे दुर्लभ है, इसी विचार से मानों उसका रस चखते हैं। अँगूठा पीते देख सब को मार्कंडेय-प्रलय का स्मरण आया और समुद्र में ऊँची लहरें उठीं, पहाड़ काँप गए, कमठ की पीठ व्याकुल हो गई, शेषनाग के हज़ारों फन डोलने लगे। ये सब प्रलय के चिन्ह हैं [illegible] प्रयाग का [illegible] हिलने लगा [illegible] यह वह प्रलय जल में डूबना [illegible] में [illegible] है ने [illegible] जाने [illegible] मन में [illegible] दिया। सूरदास कहते हैं कि प्रभु [illegible]

वाले और दुष्टों के हृदय में गांसी के समान चुभनेवाले हैं (ये अपने सेवकों और सज्जनों को भयभीत नहीं करते)

अलंकार—पंक्ति ३ से ६ तक गम्योत्प्रेक्षा, ७ से १० तक स्मरण।

(नोट)—बहुत सुन्दर कल्पना है।

७—राग बिलावल

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै॥
कब द्वै दाँत दूध के देखौं कब तुतरे मुख बैन झरै।
कब नंदहि कहि बाबा बोलै कब जननी कहि मोहि ररै॥
कब मेरो अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरै।
कब धौं तनक तनक कछु खैहै अपने कर सों मुखहि भरै॥
कब हँसि बात कहैगो मोसों जा छबि तें दुख दूर हरै।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े आपु गए कछु काज घरै॥
इहि अंतर अँधवाह उठ्यो इक गरजत गगन सहित घहरै।
सूरदास ब्रज लोग सुनत धुनि जो जहँ तहँ सब अतिहि डरै।

[illegible] घुटुरुवन = हाथों और घुटनों के बल [illegible] [illegible] तुतरे बैन = [illegible] बाबा के [illegible]

के पहले अक्षर के बदले नगणों का पहला अक्षर, तीसरे के बदले नगणों का तीसरा अक्षर कहेगा। इसी प्रकार हर हर को तर तर और हाल को पाल बोलेगा।

इसी बोली को तोतली बोली कहते हैं।

८—राग धनाश्री

हरि किलकत जसुदा की कनियाँ।
निरखि निरखि मुख हँसति स्याम को सो निधनी के धनियाँ॥
अति कोमल तनु स्याम को बार बार पछितात।
कैसो बच्यो जाउँ बलि तेरी तृनावर्त के घात॥
ना जानौ धौं कौन पुन्य तैं को करि लेत सहाइ।
वैसो काम पूतना कीनो इहि ऐसो करो मार॥
माता दुखित जानि हरि बिहँसे नान्हीं दँतुरि दिखाइ।
'सूरदास' प्रभु माता चित तैं दुख डारयो बिसराइ॥

शब्दार्थ—कनियाँ=(सं० कन्ध) गोदी। निधनी=निर्धन, गरीब। धनियाँ=धनी, मालिक। तृनावर्त=बवंडर। घात=चोट। नान्हीं=छोटी। दँतुरि=दाँत (बच्चों के दूध के दाँत)। बिसराइ डारयो=भुलवा दिया।

भावार्थ—सरल ही है।

६—राग धनाश्री

सुतमुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दँतियाँ प्रेम मगन तनु की सुधि भूली॥
बाहिर तें तब नंद बुलाए देखौ धौं सुन्दर सुखदाई।
तनक तनक सी दूध की दँतियाँ देखौ नैन सुफल करो आई॥
आनँद सहित महर तब आए मुख चितवत दोउ नैन अघाई।
'सूर' स्याम किलकत द्विज देख्यो मनो कमल पर बीजु जमाई॥

शब्दार्थ—फूली = हर्षित हुई। धौं = तो (यहाँ यह शब्द बात पर ज़ोर देने के लिये है जैसे अँगरेज़ी में 'do' शब्द आता है। (देखो धौं = Do see)। नैन सुफल करो = नेत्रों के पाने का तात्पर्य पूरा कर लो (नेत्रों का मुख्य विषय है सौन्दर्य को देखना। यहाँ भाव यह है कि दँतियाँ अति सुन्दर हैं) महर = नन्द जी। अघाई = तृप्त कर, इच्छा भर। द्विज = दाँत। बीजु = बिजली। जमाई = जमी है।

भावार्थ— सरल है।

[illegible]
[illegible]

१०—राग बिलावल

आजु भोर तमचुर की रोल।
गोकुल में आनंद होत है मंगल धुनि महराने ढोल॥
फूले फिरत नंद अति सुख भया हरषि मँगावत फूल तमोल।
फूली फिरत जसोदा घर घर उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल॥
तनक बदन, दोउ तनक तनक कर, तनक चरन पोछत पटझोल।
कान्ह गले सोहै कँठमाला, अंग अभूषन अँगुरिनि गोल॥
सिर चौतनी डिठौना दीने आँखि आँजि पहिराइ निचोल।
स्याम करत माता सौं झगरो अटपटात कलबल कर बोल॥
दोउ कपोल गहि कै मुख चुंबति बरष दिवस कहि करत कलोल।
'सूर' स्याम ब्रजजन-मन-मोहन बरष गाँठि को डोरा खोल॥

शब्दार्थ—भोर=सवेरे, तड़के। तमचुर की रोल=मुर्गा बोले से। तमचुर=(सं० ताम्रचूड़) मुर्गा। मंगलधुनि=मंगल सूचक पांच ध्वनियां (देखो पद नं० २) महराने ढोल=अहीरों के मोहल्ले में। फूले फिरत=हर्षित फिरते हैं। तमोल=पान। अन्हवाय अमोल=सिरसे स्नान कराके (आमौलि+स्नान)। पट झोल=अंचल। कठमाला=कठुला। गोल=छल्ला। चौतनी=चौगोशिया टोपी। डिठौना=कुदृष्टि निवारक कज्जल बिंदु जो माताएँ बच्चों के कपोल में लगाती हैं। निचोल=कपड़े। अटपटात=साफ शब्दों में नहीं कह सकते। कलबल=अस्पष्ट।

हुआ। मीठा का गुलक लिया=नाऊ को गुड़की दी (कृष्ण को बहलाने के लिये)। झमकि=शीघ्रता से। ढुरकि चली=धीरे धीरे गईं। बाला=स्त्रियां। ब्रजपुर=गोकुल।

भावार्थ—कुँवर कन्हैया का कनछेदन है, उनके हाथ में पूड़ी और गुड़ की डली दी गई है। (यह लीला देखकर आश्चर्य से) ब्रह्मा और विष्णु जी हँसते हैं, और यशोदा की छाती धड़कने लगी। कान के निकट सींक से बड़ी चतुराई से रोचना लगाया गया (कान की लौ में रोचना मल देने से कान की कोंचिया मुलायम हो जाती है और छेदने से कष्ट कम होता है) सोने की दो बालियां मँगाईं (और कान छेद दिये गये) कान छेदने की फुरती को मैं क्या वर्णन करूं। यह घटना देखते (देख न सकने के कारण) दोनों माताओं के नेत्रों में आँसू आगये (मातृ हृदय कितना कोमल होता है) उन्होंने मुख फेर लिया। (कृष्ण रो उठे) उनको रोते देख मातायें व्याकुल हो गईं और (कृष्ण की मनुहारि करने को) नाऊ को घुड़की दी। (कि तूने बच्चे के कान क्यों छेद दिये, देख तुझे पाटती हूँ)। कृत्य पूरा हो जाने पर यशोदा हँसने लगीं (आनंदित हुईं) उनको हँसते देखकर सब स्त्रियां मुसकुराने लगीं, तदनन्तर सब और और घर के भीतर चली गईं। इसके अनन्तर नहछू अन्य मंगल काज। दान दक्षिणा, इनाम बखशीश इत्यादि। होने लगे और गोकुल की स्त्रियां अत्यन्त खुश हुईं।

(नोट)—इस पद में उस समय के दृश्यों तथा भावों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है । मातृ हृदय का तो सजीव ही फोटो खींचा गया है। (धन्य सूरदास)

१२—राग धनाश्री

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई ।
खेलत कुँवर कनक आँगन में नैन निरखि छबि छाई ॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहुविधि सुरँग बनाई ।
मानो नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई ॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई ।
मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई ॥
[illegible] लटकन भाल लुनाई ।
[illegible] मनो भौम सहित समुदाई ॥
[illegible]

अवली=पंक्ति, समूह । लटकन=बोरा, घुँघुरू । लुनाई=सुन्दरता । गुरु असुर=असुर गुरु (शुक्र) । देव गुरु=बृहस्पति । भौम=मंगल । समुदाय=समूह । बिज्जु=बिजली। खंडित=अस्पष्ट । जलप जलप जलपाई=थोड़ी थोड़ी वार्ता का करना । रेनु=धूल । मंडित=भूषित ।

भावार्थ—कृष्ण की सुन्दरता मैं कहाँ तक वर्णन करूं। कुमार कृष्ण नंद के कनक आँगन में खेलते हैं, उन्हें देख कर नेत्रों में छवि छा जाती है (सर्वत्र छवि ही छवि दिखाई पड़ती है) अनेक रंगोंवाली सुंदर टोपी श्याम के सिर पर ऐसी लगती है मानो नवीन श्याम बादल पर इंद्रधनुष रख दिया गया हो। कृष्ण के मुख पर फैलकर अति सुंदर कोमल बाल मन को हरते हैं और ऐसे जान पड़ते हैं मानो प्रस्फुटित कमल के ऊपर पंक्तिबद्ध भ्रमरावली हो। भाल पर लाल, सफेद और पीले तथा लाल मणि जटित (नीलम, हीरा, पुखराज और माणिक जटित) बोरे (लटकन) लटक लटक कर ऐसा शोभा देते हैं मानो शनि, शुक्र बृहस्पति और मंगल का समुदाय एकत्र हुआ है। दूध के दाँतों की छवि कही नहीं जाती। हां एक अद्भुत उपमा मन में आती है, कि तुतलाने और हँसने समय जो दाँत दिखाई देते हैं वे छिप जाते हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो बादल में बिजली चमकती और छिपती हो। वे जो थोड़ा थोड़ा स्पष्ट वार्ता करते हैं, उस वार्ता के टूटे फूटे वचन सुन आनंद देते हैं। वे

घुटनों के बल चलते हैं, धूल से शरीर भूषित हो रहा है, ऐसे सुंदर रूप पर सूरदास बलिहार होता है।

अलंकार—पंक्ति ३, ४ और ५, ६ तथा ७, ८ और ९, १० में बड़ी ही सुंदर उत्प्रेक्षाएँ हैं। ११ वीं पंक्ति में विभावना (दूसरी)।

(नोट)—कृष्ण के बाल रूप की सुंदर झाँकी है। यह पद कृष्ण भक्तों को कंठाग्र कर लेना चाहिये।

१३—राग धनाश्री

कान्ह चलत पग द्वै द्वै धरनी।
जो मनमें अभिलाष करत ही सो देखत नँदघरनी॥
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मन हरनी।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छबि जाय न बरनी॥
ब्रज जुवती [illegible] सुंदरता की सरनी
[illegible]

गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर लेत बलैया।
मनि खंभन प्रतिबिंब बिलोकत नचत कुँवर निज पैया॥
नंद जसोदाजी के उर तें इह छवि अनत न जइया।
'सूरदास' प्रभु तुमरे दरस को चरनन की बलि गइया॥

शब्दार्थ—हलधर=बलदेव जी। जिनि=मत। कौतूहल=आश्चर्य मय खेल। बलैया लेना=ऐसी इच्छा करना कि अमुक व्यक्ति पर आनेवाली आपत्ति मुझ पर चाहे आजाय पर वह सुरक्षित रहे। निज पैया=अपने पैरों पर। न जैया=नहीं जाती। बलि गइया=बलिहार गई।

भावार्थ—बहुत सरल है।

(नोट)—३, ४ पंक्ति में स्वपुत्र रक्षा हेत मातृ हृदय की चिंता का अच्छा प्रदर्शन है। ६ वीं में बाल प्रकृति का चित्रण है। अन्य पदों में भी पाठिकाओंको विचारना चाहिये कि इस पद में सूरदास जी किस भाव का चित्रण कर रहे हैं।

१६—राग कान्हरो

टाढ़ी अजिर जसोदा अपने हरिहि लिये चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाऊं तुम्हारी देखौ धौं भरि नैन जुड़ावत॥
चितै रहे तब आपुन ससि तन अपने कर लैलै जु बतावत।

यशोदा पछताती हैं कि मैंने यह क्या किया, अब तो कृष्ण उसके लिये रो रहा है और दुखी होता है। (उन्हें बहलाने के लिये) सूर कहते हैं कि, यशोदा समझाती हैं और "देखो आकाश में यह चिड़िया उड़ रही है," ऐसा कह कह कर बहलाती हैं।

२०—राग कान्हरो

किहि बिधि करि कान्है समुझैहौं।
मैं ही भूलि चन्द दिखरायो ताहि कहत 'मोहि दै मैं खैहौं'॥
अनहोनी कहुँ होत कन्हैया देखी सुनी न बात।
यह तौ आहि खिलौना सबको खान कहत तेहि तात॥
यहै देत लवनी नित मोको छिन-छिन साँझ सवारे।
बार-बार तुम माखन माँगत देउँ कहाँ ते प्यारे॥
देखत रहौ खिलौना चन्दा आरि न करो कन्हाई।
'सूर' स्याम लियो महरि जसोदा नन्दहिं कहत बुझाई॥

शब्दार्थ—अनहोनी = असम्भव बात (चन्द्र भक्षण)। लवनी = माखन। सवारे = प्रातः काल। आरि = हठ। बुझाई = समझा कर यहै देत [illegible] प्यारे = यही चन्द्रमा तो मुझे नित्य माखन देता है, जिसे तुम सन्ध्या सवेरे बार-बार माँगते

हो, (उसी चन्द्रमा को तुम मांगने चलते हो) तो फिर माखन कहां से मिलेगा, और मैं तुम को कहां से लाकर दूंगी।

भावार्थ—सरल है।

२१—राग कान्हरो

बार बार जसुमति सुत बोधति आउ चंद तोहिं लाल बुलावै।
मधु मेवा पकवान मिठाई आपु न खैहै तोहिं खवावै॥
हाथहिं पर तोहिं लीने खेलै नहिं धरनी बैठावै।
जल-भाजन कर लै उठावति या मैं तनु धरि आवै॥
जल-पुट आनि धरनि पर राख्यो गहि आन्यो चंदा दिखरावै।
'सूरदास' प्रभु हँसि मुसकाने बार बार दोऊ कर नावै।

शब्दार्थ—बोधति=समझाती है, बहलाती है। मधुमेवा=मीठे मेवे (छोहारा, दाखादि)। जल पुट=जल पात्र। जल से भरा बड़ा पात्र। गहि आन्यो=पकड़ लाई। नावै=जल पात्र में [illegible]

भावार्थ—सरल है।

नोट—'प्रभु हँसि मुसुकाने' (१) आनंदित हुए कि चन्द्रमा आ गया। बाल भाव से। (२)—प्रभु भाव से। इस

हेतु मुसुकाये कि देखो यशोदा हमें पुत्र समझ कर कैसा भोरानी है।

२२—राग रामकली

मेरो माई ऐसो हठी बालगोबिन्दा।
अपने कर गहि गगन बतावत खेलन को माँगै चन्दा॥
बासन कैं जल धर्‌यो जसोदा हरि को आनि दिखावै।
रुदन करत ढूँढै नहिं पावत धरनि चन्द कैसे आवै॥
दूध दही पकवान मिठाई जो कछु माँगु मेरे छौना।
भौंरा चकई लाल पाट को लेडुवा मांगु खिलौना॥
दैत्यदलन गजदंत उपारन कंसकेस धरि फंदा।
'सूरदास' बलि जाइ जसोमति सुखसागर, दुख खंदा॥

शब्दार्थ—अपने कर गहि गगन बतावत = मेरा हाथ अपने हाथ में पकड़ कर आकाश की ओर उठाता है (कि चन्द्रमा को पकड़ दे) बासन कैं = पात्र में भर कर। छौना = (स० शावक, प्रा० छाव + 'ओना' प्रत्यय) बच्चा। भौंरा = लट्टू। चकई—एक खिलौना विशेष जो चक्र के आकार का होता है और डोर से फेंक कर नचाया जाता है। लाल पाट—सुर्ख रेशम। लडुवा = वह डोरा जिससे लट्टू या चकरा नचाई जाती है (इस काशी में 'लत्ती' कहते हैं)। कंसकेस धरि फंदा—कंसके

शब्दार्थ—उघारयो=(सं० उद् घाटन) खोला। नैन निसा के द्वंद=नेत्रों और रात्रि के झगड़े से (रात्रि ने आकर नेत्रों में निद्रा भर दी जिससे कुछ देर सोना पड़ा और उतनी देर तक कृष्ण को न देख सके) मंद=धीमा। पय सिंधु=क्षीर सागर। किरन मकरंद=छविछटा रूपी अमृत।

(विशेष)—नैन निसा के द्वंद—इन शब्दों के प्रयोग से जो भाव प्रकट किया गया है, इसी प्रकार को 'उक्ति वैचित्र्य' कहते हैं। सूरदास इसमें बड़े कुशल हैं।

अलंकार—३-४ पंक्ति में उत्प्रेक्षा।

२४—राग बिलावल

जागिये ब्रजराज कुँवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद वृन्द सकुचित भए भृंग लता भूले॥
तमचुर खग रोर सुनहु बोलत बनराई॥
राँभति गौ खरिकन में बछरा हित धाई॥
बिधु मलीन रविप्रकाश गावत नर नारी॥
'सूर' स्याम प्रात उठो अंबुज कर धारी॥

शब्दार्थ—तमचुर=(सं० ताम्रचूड़) मुर्गा। रोर=(सं० रव) शोर। बनराइ=बन के मधुर भाषी पक्षी। राँभति=

जो रस नन्द जसोदा विलसत सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ।
भोजन करि नँद अचवन कीन्हों मांगत 'सूर' जुठनियाँ॥

शब्दार्थ—जेँवत=भोजन करते हैं। नँदरनियाँ=(नन्द-रानी) यशोदा। व्यंजन=भोजन की वस्तुएँ। अनगनियाँ=अगणित। रुचि मानत दधि दनियाँ=जो कृष्ण को रुचता है। डारत=भूमि में गिरा देते हैं। छबि धनियाँ=छबि के धनी (श्रीकृष्ण)। आपुन=आप खुद। नावत=डालते हैं। रस=आनन्द।

भावार्थ—सरल ही है।

(नोट)—इस पद के कुछ तुकान्त यद्यपि गढ़ंत के हैं, तथापि प्रसाद युक्त और मधुर हैं। ऐसी गढ़ंत में सूर बड़े कुशल हैं।

३०—राग नट

खेलत स्याम अपने रँग।
नन्दलाल निहारि शोभा निरखि थकित अनंग॥
चरन की छबि निरखि डरप्यो अरुन गगन छपाइ।
जानु रम्भा की सबै छबि तेहि निदरि लई छँडाइ॥

३२—राग रामकली

मो देखत जसुमति तेरे ढोटा अबहीं माटी खाई।
इह सुनि कै रिस करि उठि धाई बाँह पकरि लै आई॥
इक कर सौं भुज गहि गाढ़ें करि इक कर लीने साँटी।
मारति हौं तोहि अबहिं कन्हैया बेगि न उगलै माटी॥
ब्रज लरिका सब तेरे आगे झूठी कहत बनाई।
मेरे कहे नहीं तू मानति दिखरावौं मुख बाई॥
अखिल ब्रह्मांडखण्ड की महिमा देखराई मुख माहीं।
सिंधु सुमेरु नदी बन परबत चकित भई मन माहीं॥
करतें साँटि गिरत नहिं जानी भुजा छाँड़ि अकुलानी॥
'सूर' कहै जसुमति मुख मूँदेउ बलि गइ सारँग-पानी॥

शब्दार्थ—ढोटा=(सं० दुहितृ=) बेटा, लड़का। साँटी=छड़ी। मुख बाना=मुँह फैलाना। अखिल=सब। सारँग-पानि=विष्णु भगवान।

भावार्थ—सरल है।

३३—राग धनाश्री

मोहन काहे न उगलो माटी।
बार-बार अनरुचि उपजावत महरि हाथ लिए साटी॥

महतारी को कह्यो न मानत कपट चतुरई ठाटी ।
बदन पसारि दिखाइ आपने नाटक की परिपाटी ॥
बड़ी बार भई लोचन उघरे भ्रम-जानिनि नहीं फाटी ।
'सूरदास' नँदरानि भ्रमित भई कहत न मीठी खाटी ॥

शब्दार्थ—अनरुचि=नाराजी । ठाटी=की । आपने नाटक की परिपाटी=सृष्टि की रचना । भ्रम जानिनि नहि फाटी=भ्रम दूर न हुआ । मीठी खाटी=भला या बुरा ।

भावार्थ—सरल है ।

अलंकार—'भ्रम जानिनि' में रूपक । 'मीठी खाटी' में लोकोक्ति ।

३४—राग गौरी

सखा सहित गए माखन चोरी ।
देख्यो स्याम गवाच्छ पथ है गोरी एक मथति दधि भोरी ॥
हेरि मथानी धरी माट तें माखन हो उतरात ।
आपुन गई कमोरी माँगन हरि पाई ह्याँ घात ॥
पैठे सखन सहित घर सूने माखन दधि सब खाइ ।
छूछी छाँड़ि मटुकिया दधि की हँसि सब बाहिर आइ ॥

३५—राग सारंग

जसोदा कहाँ लौं कीजै कानि।

दिनप्रति कैसे सही परति है दूध दही की हानि॥

अपने या बालक की करनी जो तुम देखो आनि।

गोरस खाइ ढूँढ़ि सब बासन भली करी यह बानि॥

मैं अपने मंदिर के कोने माखन राख्यो आनि।

सोई जाइ तुम्हारे लरिका लीनो है पहिचानि॥

बूझी ग्वालिनि घर मैं आयो नेकु न संका मानी।

'सूर' स्याम तब उतर बनायो चींटी काढ़त पानी॥

शब्दार्थ—कानि=लिहाज़, अदब। सही परति है=सहन हो सकती है। बानि=आदत। उतर बनायो=बात बना कर जवाब दिया। चींटी काढ़त पानी=अपने हाथ से इसमें पड़ी हुई चींटियाँ निकाल रहा हूँ।

भावार्थ—सरल है।

३६—राग धनाश्री

गोपाल दुरे हैं माखन खात।

देखि सखी सोभा जु बनी है स्याम मनोहर गात।

उठि अवलोकि ओट ठाढ़े ह्वै, जिहिं बिधि हौं लखि लेत।
चकृत बदन चहूँ दिसि चितवत और सखन को देत॥
सुन्दर कर आनन समीप अति राजत इहिं आकार।
मनु सरोज बिधु-बैर बंचि करि लिये मिलत उपहार॥
गिरि-गिरि परत बदन ते उर पर द्वै-द्वै दधिसुत बिंदु।
मानहु सुभग सुधाकन बरपत लखि गगनांगन इंदु॥
बालबिनोद बिलोकि 'सूर' प्रभु सिथिल भईं ब्रजनारि।
फुरै न बचन, बरजिये कारन रही बिचारि-बिचारि॥

शब्दार्थ—दुरे हैं=छुके हैं, छिपे हैं। बिधु बैर बंचिकै=चंद्रमा से शत्रुता त्याग कर। उपहार=भेंट। दधिसुत=माखन। गगनांगन=आकाश में। इन्दु=चंद। फुरै न बचन=जबान से बचन नहीं निकलते। बरजिये=मना करना।

भावार्थ—श्रीकृष्ण (किसी ग्वालिन के घर) छिपे हुए माखन खा रहे हैं। (एक सखी अन्य सखी प्रति कहती है) हे सखी! देख तो कृष्ण के मनोहर शरीर की कैसी शोभा है। उठ और ओट में खड़ी होकर इस शोभा को देख जैसे मैं देख रही हूँ। चकित होकर चारों ओर देख रहे हैं (कि कोई देखता तो नहीं।) आप खाते हैं और सखाओं को भी देते हैं। (उनका) सुन्दर हाथ मुख के निकट ऐसा जान पड़ता है, मानो कमल चंद्रमा से बैर छोड़ कर भेंट लिए हुए मिल रहा है। माखन की कुछ बूँदें मुख से छुटकर वक्षस्थल पर गिर-गिर पड़ती

हैं वे देखने में ऐसी जान पड़ती हैं, मानो चंद्रमा आकाश पर सुधाकण बरसा रहा है। कृष्ण का यह बाल-विनोद देखकर सूरदास कहते हैं, कि ब्रजनारियां मुग्ध हो रही हैं, मुख से वचन नहीं निकलते, यद्यपि कुछ कहने को विचारती हैं।

अलंकार—५,...७ पंक्तियों में उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है। व्यंग्य भाव है, कृष्ण की अति सुन्दरता व्यंग्य है।

३७—राग धनाश्री

चोरी करत कान्ह धरि पाये।
निसि बासर मोहि बहुत सतायो अब हरि हाथहिं आये॥
माखन दधि मेरो सब खायो बहुत अचगरी कीन्हो।
अब तो घात परे हौ लालन तुम्हें भले मैं चीन्ही॥
दोउ भुज पकरि कह्यो कहँ जैहो माखन लेउँ मँगाई
[illegible]

लूगी। सौं=सौगंध, कसम। बुझाई गई=जाती रही। उर लाइ लियो=हृदय से लगा लिया।

भावार्थ—सरल ही है।

(नोट)—इस पदमें "मुसकात चितै" शब्द प्रत्यक्ष कह रहे हैं कि उस ग्वालिन का कृष्ण प्रति वात्सल्य भाव है, न कि शृंगार भाव।

३८—राग सारंग

लोगन कहत झुकति तू बौरी।
दधि माखन गाँठी दै राखत करत फिरत सुत चोरी॥
जाके घर की हानि होत नित सो नहिं आन कहै री?
जाति पाँति के लोगन न्यावत और बसैहै मेरी॥
घर घर कान्ह खान को डोलत अनिहि कृपिन तू है री।
'सूर' स्याम को जब जोइ भावै सोइ तबहीं तू दे री॥

शब्दार्थ—मुरकति=क्रुद्ध होती है, खीझती है। बौरी=(सं० वातूल) बावरी, पगली। गाँठी दै राखति=छिपा रखती है। नाहिं आन कहै री=आकर कहै ना? आवहना न है। और बसैहै मेरी=क्या अपने निकट और को बसावेगा? छ्वावत=छुलाता।

(नोट)—ओरहने मिलने पर यशोदा कृष्ण पर क्रुद्ध होकर उन्हें डांटती हैं, तब कोई सखी यशोदा प्रति ये वचन कहती है।

भावार्थ—सरल है।

३६—राग मलार

महरि तैं बड़ी कृपिन है माई।

दूध दही बिधि को है दीनो सुत डर धरति छिपाई॥
बालक बहुत नाहिं री तेरे एकै कुँवर कन्हाई।
सोऊ तो घर ही घर डोलत माखन खात चुराई॥
वृद्ध बैस पूरे पुन्यनि तैं तैं बहुतै निधि पाई।
नाहू को ऐसे पियवे को कहा करनि चतुराई।
सुनि के बचन चतुर नागरि के जसुमति नंद सुनाई।
सूर स्याम को ओरहन [illegible] के ऐसन को आई॥

[illegible]ार्थ—[illegible] घर घर चोरी करता फिरता [illegible]

[illegible]

[illegible]

४०—राग सारंग

कन्हैया तू नहिं मोहिं डेरात।
षटरस धरे छाँड़ि कत पर घर चोरी करि करि खात॥
बकति बकति तोसों पचि हारी नेकहु लाज न आई।
ब्रज परगन सरदार महर, तू ताकी करत नन्हाई॥
पूत सपूत भयो कुल मेरे अब मैं जानी बात।
'सूर' स्याम अबलौं तोहिं बकस्यो तेरी जानी घात॥

शब्दार्थ—पचिहारी=थक गई। ब्रज परगन सरदार महर=ब्रज के परगने का बड़ाभारी सरदार (नंद बाबा)। नन्हाई करत=छोटाई करवाते हो, निन्दा करवाते हो। सपूत=(अत्यंत तिरस्कृतव्यंग से) कुपुत्र, बुरा बेटा। बकस्यो=माफीदी, दोष क्षमा किये। तेरी जानी घात=अब तेरी शरारत मुझे प्रमाणित हो गई।

भावार्थ—सरल ही है।

४१—राग रामकली

मैया! मैं नाहीं दधि खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो॥

देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो॥
मुख दधि पोंछि कहत नँदनंदन दोना पीठि दुरायो।
डारि सांट मुसुकाइ तबहि गहि सुत को कंठ लगायो॥
बाल विनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप देखायो।
'सूरदास' प्रभु जसुमति के सुख सिव बिरंचि बौरायो॥

शब्दार्थ—ख्याल परे=खेल (मज़ाक) करने की इच्छा से। सींका=सिकहर। भाजन=दधिपात्र। सांट=छड़ी।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—अंतिम पंक्ति में अतिशयोक्ति।

४२—राग रामकली

देखो माई या बालक की बात।
बन उपवन सरिता सब मोहे देखत स्यामल गात॥
मारग चलत अनीति करत हरि हठ करि माखन खात।
पीतांबर लै सिर तें ओढ़त अंचल दै मुसुकात॥
तेरी सौं कहा कहौं जसोदा उरहन देत लजात।
जब हरि आवत तेरे आगे सकुचि तनक ह्वै जात।

कौन कौन गुन कहौं स्याम के नेक न काहु डरात।
'सूर' स्याम मुख निरखि जसोदा, कहति कहा यह बात॥

शब्दार्थ—उपवन=बाग। तनक=छोटे से। गुन=(यहां) अवगुण, शरारत।

भावार्थ—सरल ही है।

(नोट)—७ वीं पंक्ति के 'गुन' शब्द में अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि समझना चाहिये।

- -

४३—राग सारंग

बांधौं आजु कौन तोहिं छोरै।
बहुत लंगरई कीनी मोसों भुज गहि रजु ऊखल सों जोरै॥
जननी अति रिस जानि बँधायो चितै बदन लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रजजुवती उठि धाई कहत कान्ह अब क्यों नहिं चोरै॥
ऊखल सों गहि बांधि जसोदा मारन को सांटी कर तोरै।
सांटा लखि ग्वालिन पछितानी विकल भई जहँ तहँ मुख मोरै॥
सुनहु महरि ऐसी न बूझिये सुत बांधत माखन दधि थोरै।
'सूर' स्याम हमें बहुत सतायो, चूक परी हमतें यहि भोरै॥

शब्दार्थ—लंगरई=ढिठाई, बेअदबी। रजु=रस्सी।

यशोदा! बच्चे का मुहँ देख, क्यों इतना अधिक क्रोध करती है? यह दुखदाई रस्सी कमर से खोल दे, हाथ से साँट फेंक दे। बतला तो तुझे ऐसे दुधमुहें बच्चे पर इतना क्रोध कैसे होता है? मुख पर आँसू भी हैं और माखन बुंद भी हैं, देख कर आँखों को सुख मिलता है, मानो चन्द्रमा तारागण सहित अमृत और मोती टपका रहा है। सूरदास कहते हैं कि ये वही स्याम हैं जिन पर सर्वस्व न्यौछावर कर डालना चाहिये (ईश्वर ही हैं, पर) न जानें क्यों ब्रज में नंद के घर आकर प्रगट हुए हैं।

अलंकार—पंक्ति ५, ६ में उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

४५—राग सोरठ

जसोदा तेरो भलो हियो है माई।
कमल नयन माखन के कारन बाँधे ऊखल लाई॥
जो संपदा देव मुनि दुरलभ सपनेहुँ दइ न दिखाई।
याही ते तू गरब भुलानी घर बैठे निधि पाई॥
सुत काहू को रोवत देखति दौरि लेत हिय लाई।
अब अपने घर के लरिका सों इती कहा जड़ताई॥
बारंबार सजल लोचन ह्वै चितवत कुँअर कन्हाई।
कहा करौं बलि जाउँ छोरती तेरी सौंह दिवाई॥

जो मूरति जल थल मों व्यापक निगम न खोजत पाई।
सो मूरति तू अपने आँगन चुटकी दै दै नचाई॥
सुरपालक सब असुर-सँहारक त्रिभुवन जाहि डराई।
'सूरदास' प्रभु की यह लीला निगम नेति नित गाई॥

शब्दार्थ—भलो=(यहाँ) बुरा। हियो=हृदय। संपदा=संपत्ति। हिय लाइ लेत=हृदय से लगा लेती थी। इती=इतनी। जड़ताई=कठोरता। कहा करौं······दिवाई=क्या करूँ मैं तो बंधन से छोर देती, पर यशोदा ने तेरी ही सौगंद धरा दी है (ये बचन किसी स्त्री के श्रीकृष्ण प्रति हैं)। निगम=वेद। दै दै=दे दे कर।

भावार्थ—कठिन नहीं।

(नोट)—इस पद में ईश्वर का महत्ववर्णन है।

४६—राग गौरी

निरखि स्याम हलधर मुसुकाने
को बाँधे को छोरै इनको इन महिमा येई पै जाने
उतपति प्रलय करत हैं यह सेस सहस मुख सुजस बखाने
जमलार्जुनहि उधारन कारन, कारन करन आपन मनमाने

असुरसंहारन भगतहितकारन पावनपतित कहावन बाने।
'सूरदास' प्रभु भाव भगति के अतिहित जसुमति हाथ बिकाने॥

शब्दार्थ—हलधर=बलदेवजी। कारन करन=कोई मोका निकाल रहे हैं। अपन मनमाने=अपने मन का। बाने=विरद। भाव भगति के=भक्ति की भावना से। जसुमति हाथ बिकाने=यशोदा के हाथों बिक गए हैं (अधीन हो गए हैं)

(नोट) यमलार्जुन=नल और कूबर नाम के दो कुबेर पुत्र शापवश ब्रज में आकर अर्जुन वृक्ष के रूप में पैदा हुए थे (यमल=दो, अर्जुन=अर्जुन नामक वृक्ष) उनको गिरा कर कृष्ण ने उनका उद्धार किया।

इससे पूर्ववाले पद में कहा है कि न जाने कृष्ण ब्रज में क्यों प्रगटे। इसी का उत्तर इस पद में है कि यशोदा की भक्ति भावना से प्रगटे।

४७—राग गूजरी

जसोदा कान्हहु तें दधि प्यारो।

डारि देहु कर मथत मथानी तरसत नंद दुलारो॥
दूध दही माखन वारौं सब जाहि करति तू न्यारो।
[illegible]॥

ब्रह्म सनक सिव ध्यान न पावत सो ब्रज गैयन चारो।
'सूर' स्याम पर बलि बलि जैये जीवन प्रान हमारो॥

शब्दार्थ—कान्हर=कृष्ण। तरसत=दुःख पा रहा है। गारो=घमंड। कुंभिलानो=(सं० कु+म्लान) बुरी तरह से मलीन हो गया है। सनक=सनकादि ऋषि। गैयन चारो=गायों को चराया। बलि जाना=निछावर होना। जीवन प्रान हमारो=जो हमारे जीवन और प्रानों का कारण है।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—मुख चंद में रूपक। 'जीवन प्रान हमारो' में दूसरा हेतु 'जीवन प्रान हमारो' में गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

४८—राग धनाश्री

जसुमति केहि यह सीख दई।
सुतहि बाँधि तू मथत मथानी ऐसी निठुर भई॥
हरे बोलि जुवतिनि को लीनो सुनि सब नरुनी नई।
लरिकहि त्रास दिखावत रहियै कत मुरझाय गई॥
मेरे प्रान जीवन धन माधव बाँधे बेर भई।
'सूर' स्याम कहँ त्रास दिखावत तुम कहा करत दई॥

असुरसंहारन भक्तहितारन पावनपतित कहावन बाने।
'सूरदास' प्रभु भाव भगति के अतिहित जसुमति हाथ बिकाने॥

शब्दार्थ—हलधर = बलदेवजी। कारन करन = कोई मौका निकाल रहे हैं। अपन मनमाने = अपने मन का। बाने = विरद। भाव भगति के = भक्ति की भावना से। जसुमति हाथ बिकाने = यशोदा के हाथों बिक गए हैं (अधीन हो गए हैं)

(नोट) जमलार्जुन = नल और कूबर नाम के दो कुबेर पुत्र शापवश ब्रज में आकर अर्जुन वृक्ष के रूप में पैदा हुए थे (जमल = दो, अर्जुन = अर्जुन नामक वृक्ष) उनको गिरा कर कृष्ण ने उनका उद्धार किया।

इससे पूर्ववाले पद में कहा है कि न जानें कृष्ण ब्रज में क्यों प्रगटे। इसी का उत्तर इस पद में है कि यशोदा की भक्ति भावना से प्रगटे।

४७—राग गूजरी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

शब्दार्थ—केहि यह सीख दई=तुझे किसने यह बात सिखाई है (कि कृष्ण को इस प्रकार दंड दे)। निठुर=निर्दय। हरे=धीरे से। सुनि ...नई=सुन! ये सब नवयौवना तरुणी हैं (ये पुत्र प्रेम क्या जानें, ये तो पति प्रेम जानती हैं, पुत्र प्रेम तो वृद्धा जानती हैं)। लरिकहिं.. ...राहिये=बच्चों को केवल धमकाकर भय दिखला देना चाहिये (दंड न देना चाहिये) कत मुरझाय गई=अब तू क्यों म्लानमुखी हो गई है—दूसरी तरुण स्त्रियों के कहने से तू ने दंड तो दिया, पर पुत्र के कष्ट से तू दुखित तो अवश्य है (क्योंकि तू वृद्ध है और पुत्र प्रेम को जानती है)। बेर=देर। दई=दैया (आश्चर्य सूचक अव्यय)

(नोट) किसी पुत्रवत्सल वृद्धा का वचन यशोदा प्रति। अलंकार—'मेरे प्रान जीवन धन माधो' में दूसरा हेतु अलंकार और गौणी साध्यवसाना लक्षणा।

४६—राग सारंग

बन बन फिरत चारत धेनु।
स्याम हलधर संग हैं बहु गोप-बालक-सेनु॥
तृषित भए सब जानि मोहन सखन टेरत बेनु।
बोलि ल्याओ सुरभि गन सब चलो जमुन जल देनु॥

सुनत ही सब हाँकि ल्याये गाइ करि इकठैन।
हेरि दै दै ग्वाल बालक किये जमुन-तट गैन॥
रचि बकासुर रूप माया रह्यौ छल करि आइ।
चंचु एक पुहुमी लगाई इक अकास समाइ॥
मनहिं मन तब कृष्ण जान्यौ बका-सुर बिहंग।
चोंच फारि बिदारि डारौं पलक मैं करौं भंग॥

शब्दार्थ—चारतफिरत=चराते फिरते हैं। सेनु=सेना, समूह। तृषित=प्यासी। टेरत बेनु=बंसी बजाकर बुलाते हैं। जल देना=पानी पिलाना। इकठैन=एकत्र। हेरि दै दै=ग्वालों के राग से कुछ गाते हुए (हेरि=ग्वालों का गान)। गैन किये गमन किया (गए) चंचु चोंच (का एक पक्षा) पुहुमी पृथ्वी बिहंग पक्षी। बिदारि डारों=विदीर्ण कर दूँ, [illegible] मैं [illegible] भंग करूँ मार डालूँ।

[illegible]

५०—राग सारंग

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कमलपत्र दोना पलास के सब आगे धरि परसत जात।
ग्वाल मंडली मध्य स्यामघन सब मिलि भोजन रुचिकर खात॥
ऐसी भूख मांझ यह भोजन पठै दियो करि अनुमति मात।
'सूर' स्याम अपनो नहिं जेंवत ग्वालन कर तें लै लै खात॥

शब्दार्थ—छाक=वह भोजन जो चरवाहों या हलवाहों के लिये जंगल ही में पहुँचाया जाता है, ताकि उन्हें आने जाने का कष्ट न हो। सुबल, सुदामा, श्रीदामा=कृष्ण के सखा विशेष। करि=ताज़ा बना कर। जेंवत=खाते हैं। लै लै=छीन छीन कर।

भावार्थ—कठिन नहीं है।

अलंकार—'ऐसी भूख मांझ यह भोजन' में सम अलंकार।

५१—राग सारंग

ग्वालन कर तें कौर छुड़ावत।
जूठो लेत सबन के मुख को अपने मुख लै नावत॥
षटरस के पकवान धरे सब तामें नहिं रुचि पावत।
हा हा करि करि मांगि लेत हैं कहत मोहिं अति भावत॥
यह महिमा एई पै जानैं जाते आप बँधावत।
'सूर' स्याम सपने नहिं दरसत मुनिजन ध्यान लगावत॥

शब्दार्थ—कौर=(सं० कवल) ग्रास, लुकमा।

छुड़ावत=छीनते हैं। नावत=डाल लेते हैं। रुचि पावत=पसंद करते हैं, स्वाद पाते हैं। हाहा करि=अति दीनता दिखा कर। बँधावत=बंधन में पड़ते हैं। दरसत=दिखलाई पड़ते हैं।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—सम्बंधातिशयोक्ति (कृष्ण महिमा की)

५२—राग सारंग

सखन संग हरि जेंवत छाक।
प्रेम सहित मैया दै पठये सबै बनाए हैं एकताक॥
सुबल सुदामा श्रीदामा सँग सब मिलि भोजन रुचि सों खात।
ग्वालन-कर तें कौर छुड़ावत मुख लै मेलि सराहत जात॥
जो सुख कान्ह करत वृन्दावन सो सुख नहीं लोकहूँ सात।
'सूर' स्याम भगतन-बस ऐसे ब्रजहि कहावत हैं नँद-तात॥

शब्दार्थ—एकताक=अति उत्तम। मेलि=डाल कर। सात लोक=भूः, भुवः, स्वः, जनः, तपः, महः, सत्य। नँद तात=नंद के लड़के

भावार्थ—सरल है

(नोट) कृष्ण की सज्जनता और महत्व का वर्णन है

यहाँ तक बाल लीला के प्रसंग हैं

किए। राका—पूर्णिमा की रात्रि। श्री—लक्ष्मी। प्रेम पगि—प्रेम में परिपक्व होकर। हारि परी—थक गई।

भावार्थ—(कोई गोपी अन्य गोपी प्रति कहती है) हे माई कृष्ण का रूप तो देखो, सुंदरता का समुद्र ही है। मेरा मन अति चतुर होने पर भी अपनी बुद्धि और विवेक के बल पर इस समुद्र में तैर कर पार नहीं जा सकता, उसी में डूब रहा है। शरीर की श्यामता ही अथाह जलराशि है, पीतांबर की फहरानि ही लहरें हैं।

अपने शरीरको देखते हुए मटकते चलते हैं, (इसी चाल से) अंग अंग पर जो शोभा प्रकट होती है वही भँवर (जलावर्त) है। मेरु और मकराकृति कुंडल ही मछलियाँ हैं और भुजदंड ही सर्प हैं। कंठ लगी का मोती माला ही मानो दो नदियाँ [illegible] रूप [illegible] है और मुकुट मणि जटित [illegible] और [illegible] पहने हैं मानो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अलंकार—उत्प्रेक्षाओं से पुष्ट सांग रूपक (बहुत ही अच्छा है)।

२—राग गौरी

नंदनँदन मुख देखो माई।
अङ्ग अङ्ग छवि मनहु उए रवि, ससि अरु समर लजाई॥
खञ्जन मीन कुरंग भृङ्ग बारिज पर अति रुचि पाई।
श्रुतिमंडल कुंडल बिबि मकर सु बिलसत मदन सदाई॥
कंठ कपोत कीर विद्रुम पर दारिम कननि चुनाई।
दुइ सारँगबाहन पर मुरली आई देत दोहाई॥
मोहे थिर चर बिटप बिहङ्गम ब्योम बिमान थकाई।
कुसुमाञ्जलि बरषत सुर ऊपर 'सूरदास' बलि जाई॥

शब्दार्थ—समर (सं० स्मर) कामदेव। बिबि=(सं० द्वि) दो। मदन सदाई = कामदेव की सहायता से। दारिम-कन = अनार के दाने। सारंगबाहन = हाथ

भावार्थ—हे माई! कृष्ण का मुख तो देखो। अङ्ग अङ्ग पर ऐसी शोभा है मानो सूर्य उदय हो रहे हों। (आँखें चौंधिया जाती हैं।) इन अंगों की छवि पर चन्द्रमा और काम लज्जित हो जाते हैं। [illegible] (खञ्जन, मीन, कुरङ्ग, भृङ्ग) मुख

समूह। रसरुचि=प्रेम करने की इच्छा। अङ्ग अङ्ग=ठावँ ठावँ=प्रत्येक अङ्ग में इतना अधिक माधुर्य है कि देखनेवाले का मन यदि किसी अङ्ग के किसी स्थान पर लग जाय तो ऐसा जान पड़ता है कि यहीं लगा रहूँ और इसी के माधुर्य का आस्वादन किया करूँ। मोहन=मोहनेवाला। सैन=(सं० संज्ञा) इशारा। बिन मोल बिकना=बिना पसेपैसा आधीन होना, बिना रोक टोक आसक्त हो जाना।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—४ थी पंक्ति में सम और विधि। अंतिम पंक्ति में धर्मवाचकोपमानलुप्ता।

४—राग सोरठ

देखु सखी मोहन मन मोहत।
नैन कटाच्छ बिलोकनि मधुरी सुभग भृकुटि बिबि सोहत॥
चंदन खौरि ललाट स्याम कैं निरखत अति सुखदाई।
मानहु अर्धचंद्र तट अहिनी सुधा चुरावन आई॥
[illegible] कहि उपमा एक आवन।
[illegible] निरखि [illegible] बहावन॥
भृकुटी चारु निरखि ब्रजसुन्दरि यह मन करति बिचार।
सूरदास प्रभु सोभा सागर कोउ न पावत पार॥

शब्दार्थ—द्विक = दोनों। तट = निकट। मनमथ = मदन। तिरछौं = टेढ़ी।

भावार्थ—सुगम ही है।

अलंकार—२ से ६ तक की उत्प्रेक्षाएँ (अनन्वया)

५—राग गूजरी

देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर एक सैन॥
राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहि वे बिकसत, वे बिकसत दिन राति॥
अरुन सेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनु सरसुति गङ्गा जमुना मिलि संगम कीन्हो आइ॥
अवलोकनि जलधार तेज अति तहाँ न मन ठहरात।
'सूर' स्याम लोचन अपार छबि उपमा सुनि सरमात॥

शब्दार्थ—मृगज = मृगशावक। चपलाई = चंचलता। पट-तर = बराबर समान। सैन = इशारा। [illegible] राजिव = लाल कमल। इन्दीवर = नीला कमल। सतदल = सौ पंखुड़ियों वाला कमल। कुसेसय = (कुशेशय) कमल।

भावार्थ—हे सखी ! कृष्ण के चंचल नैन देखो (कितने सुन्दर हैं)। ममोला, मछली और मृगशावक की चंचलता एक इशारे के बराबर भी नहीं । राजिव, इन्दीवरादि जितने प्रकार के कमल हैं, (ये भी समता नहीं कर सकते क्योंकि) ये सब रात को सिकुड़ जाते हैं, केवल प्रातःकाल खिलते हैं, और ये (कृष्ण के नेत्र) रात दिन प्रफुल्लित रहते हैं। नेत्रों में प्रति क्षण लाल, सफ़ेद और काली झलक दिखाती है, उनकी उपमा कौन कहे, ऐसा ज्ञात पड़ता है कि मानो सरस्वती, गंगा और यमुना का संगम हुआ है । (और तीन नदियों के संगम से) चितवन रूपी जलधारा बड़ी तेज हो गई है कि वहाँ किसी का मन ठहर नहीं सकता । सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण के नेत्रों की अपार छवि का हाल सुन कर उपमान लज्जित हो जाते हैं ।

अलंकार—४ थी पंक्ति में व्यतिरेक, ६ ठी में उत्प्रेक्षा, ७ वीं में रूपक, ८ वीं में ललितोपमा ।

भावार्थ—हे सखी ! कृष्ण के चंचल नैन देखो (कितने सुन्दर हैं)। ममोला, मछली और मृगशावक की चंचलता एक इशारे के बराबर भी नहीं । राजिव, इन्दीवरादि जितने प्रकार के कमल हैं, (वे भी समता नहीं कर सकते क्योंकि) ये सब रात को सिकुड़ जाते हैं, केवल प्रातःकाल खिलते हैं, और ये (कृष्ण के नेत्र) रात दिन प्रफुल्लित रहते हैं। नेत्रों में प्रति क्षण लाल, सफेद और काली झलक दिखाती है, उसकी उपमा कौन कहे, ऐसा जान पड़ता है कि मानो सरस्वती, गंगा और यमुना का संगम हुआ है । (और तीन नदियों के संगम से) चितवन रूपी जलधारा बड़ी तेज हो गई है कि यहां किसी का मन ठहर नहीं सकता। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण के नेत्रों की अपार छवि का हाल सुन कर उपमान लज्जित हो जाते हैं।

अलंकार—४ थी पंक्ति में व्यतिरेक, ६ ठी में उत्प्रेक्षा, ७ वीं में रूपक, ८ वीं में ललितोपमा ।

६—राग रामकली

देखि री देखि कुण्डल लोल।
चारु श्रवननि ग्रहित कीन्हो झलक ललित कपोल॥
बदन मंडल सुधासरवर निरखि मन भयो भोर।
मकर क्रीड़त गुप्त परगट, रूप जल झकझोर॥
नैन मीन, भुवंगिनी भ्रुव, नासिका-थल बीच।
सरस मृगमद तिलक सोभा लसति है जनु कीच॥
मुख बिकास सरोज मानहु जुवति लोचन भृंग।
बिथुरि अलकें परीं मानहु लहरि लेत तरंग॥
स्याम तनु छबि अमृत पूरन रच्यो काम तड़ाग।
'सूर' प्रभु की निरखि सोभा ब्रज तरुनि बड़ भाग॥

शब्दार्थ—लोल=चलायमान, डोलते हुए। ग्रहित कीन्हो=ले ली है। भोर=पागल, बेसुध। मकर=मछली। भुवंगिनी=सर्पिणी। भ्रुव=भृकुटी, भौंह। मृगमद=कस्तूरी। तड़ाग=तालाब।

भावार्थ—हे सखी देख तो कृष्ण के सुन्दर कानों में कुंडल कैसे हिल रहे हैं, जिनकी झलक सुंदर कपोलों ने भी धारण की है (कुंडलों की ज्योति की शोभा कपोलों पर पड़ती है)। कृष्ण का मुखमंडल एक सुधासरोवर है। उसको देखकर मन पागल हो रहा है। [illegible] इस सरोवर में दो कुंडल मछली हैं जो [illegible]

छिपती हैं कभी दिखाई देती हैं। इस सरोवर में रूप जल की अधिकता है। नेत्र मछली हैं, भौंहें सर्पिणी हैं नासिका सरोवरके मध्य की लाट है, और कस्तूरी का सुन्दर तिलक ऐसी शोभा देता है मानों कीचड़ है। मुख की प्रफुल्लता मानो कमल है,देखने वाली स्त्रियोंके लोचन भौंरे हैं। मुख पर अलकें छिटक रही हैं येही मानों लहरें हैं। श्याम शरीर की छवि रूपी अमृत से भरा हुआ यह तालाब काम ने बनाया है। सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण की यह शोभा देखकर ब्रज की स्त्रियाँ अपने को बड़ी भाग्यवती समझती हैं।

अलंकार—अनेक उत्प्रेक्षाओं से पुष्ट (सरोवर का) सांग रूपक।

७—राग विहागरो

स्याम भुजा की सुन्दरताई।
चन्दन खौरि अनूपम राजत सो छवि कही न जाई॥
बड़े बिसाल जानु लौं परसत इक उपमा मन आई।
मनो भुजंग गगन तें उतरत अधमुख रह्यो झुलाई॥
रतन जटित पहुँची कर राजत अँगुरी मुँदरी भारी।
सूर मनो फनि सिर मनि सोभित फन फन की छबि न्यारी॥

१०—राग बिहागरो

नट वर बेष काछे स्याम।
पद कमल नख इंदु सोभा ध्यान पूरन काम॥
जानु जंघ सुघट निकाई नाहिं रंभा तूल।
पीत पट काछनी मानहु जलज-केसरि भूल॥
कनक छुद्रावली पंगति नाभि कटि के भीर।
मनहुँ हंस रसाल पंगति रहे हैं ह्रद तीर॥
झलक रोमावली सोभा ग्रीव मोतिन हार।
मनहुँ गंगा बीच जमुना चली मिलि कै धार॥
बाहुदंड बिसाल तट दोउ अङ्ग चंदन रेन।
तीर तरु बनमाल की छबि ब्रज जुवति सुख देन॥
चिबुक पर अधरन दसन दुति बिंब बीजु लजाइ।
नासिका सुक, नैन खञ्जन, कहत कवि सरमाइ॥
स्रवन कुंडल कोटि रवि छबि भृकुटि काम कोदंड।
'सूर' प्रभु हैं नीप के तर सिर धरे स्रीखंड॥

शब्दार्थ—नटवर = श्रेष्ठ नट (नृत्य करनेवाला)। बेष काछे = स्वरूप बनाए हुए। पद कमल, नख इंदु = (दोनों में रूपक अलंकार है)। पूरन काम = कामना को पूर्ण करने वाले। सुघट = बनावट में सुंदर। निकाई = सुंदरता। रंभा = कला। तूल = तुल्य। काछनी = कमरपाश। भीर = भिड़ा हुई, निकट।

बालु है, वनमाला मानो किनारे के वृक्ष हैं, जो व्रज की स्त्रियों को नेत्रानंद देते हैं। ठुड्डी के ऊपर ओठों और दाँतों की छबि देखकर बिंबाफल और बिजली लज्जित होती है। नासिका को शुक और नेत्रों को खंजन कहते कवि को शर्म आती है (अर्थात् ये उपमान उसे ठीक नहीं जँचते) कानों में जो कुंडल हैं उनकी चमक करोड़ सूर्य कीसी है, भौंहें काम के धनुष के समान हैं। सूरदास कहते हैं कि इस रूप से मोरपंख का मुकुट धारण किए श्रीकृष्ण (प्रभु) कदंब के नीचे खड़े हैं (कि सब गोपियाँ एकत्र हो जायँ तो रास नृत्य रचा जाय)।

अलंकार—रूपक और उत्प्रेक्षाएँ (बहुत से)

(नोट) इस पद में सूरदास जी ने काव्य का कला पक्ष (रूप चित्रण) दिखलाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

११—राग गौरी

नँदनंदन वृन्दावन चंद

[illegible] प्रगट त्रिभुवन बंद॥

[illegible] सुखद।

[illegible] आनँदकंद॥

[illegible] चरन बंद।

[illegible] निर्दंद॥

गोपी जन तहँ धरि चकोर गति निरख मेटि पल द्वंद ।
'सूर' सुदेस कला षोड़स परिपूरन परमानन्द ॥

शब्दार्थ—नंद-नंदन=श्रीकृष्ण। बंद=वंदनीय। वारि पति दिसि=वरुण देव की दिसा, पश्चिम। मधुपुरी=मथुरा। आनंद कंद=आनंद बरसाने वाले मेघ। राकातिथि=पूर्णमासी। संकरषन=बलदेव जी। तम=अंधकार। दनुकुलज=दैत्यगण। निकंद=नाशक। मेटि पल द्वन्द=पलकों का मुँदना मिटाकर (टकटकी लगाकर)। सुदेस=सुंदर। षोड़स=सोलह (चंद्रमा की सोलह कलाएं) परिपूरन परमानंद=पूर्ण ब्रह्म का अवतार (जो पूर्ण आनंद रूप है)।

भावार्थ—नंद-नंदन (श्रीकृष्ण) वृन्दावन के चंद्रमा हैं। यदुवंश आकाश है देवकी क्षेत्र की निधि है जिसमें त्रिभुवन वंद्य चन्द्रमा निकला गर्भरूप अमावस की रात्रि से मथुरा रूपी पश्चिम में स्वच्छन्दता से वह चंद्रमा बाहर निकला सहस्र रूपा [illegible] पर लेकर गोकुल पर आनंद [illegible] गोकुल में [illegible]

[illegible] और [illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible] और टकटकी लगाकर उसे

देखती रहीं। सूरदास कहते हैं कि वह चंद्रमा पूर्ण सोलहों कला का था (क्योंकि) वह पूर्ण ब्रह्म का अवतार था (इसी से सब को पूर्ण आनंद दिया)

अलंकार—सांगरूपक (चंद्रमा का)। प्रथम पंक्ति में सम अभेद रूपक।

(नोट) इतना सुंदर और विचार पूर्ण रूपक है कि सूर को रूपक का बादशाह मानना ही पड़ता है। सूर की कृति में ऐसे सैकड़ों रूपक हैं।

१२—राग धनाश्री

हैं लोचन तुम्हरे हैं मेरे।
तुम प्रति अंग बिलोकन कीन्हों मैं भई मगन एक अँग हेरे॥
अपनो अपनो भाग्य सखी री तुम तन्मय मैं कहूँ न नेरे।
ज्यों ज्यों बुधिये त्यों त्यों बुधि मुनिये और नहीं त्रिभुवन भट मेरे॥
स्याम रूप अवगाह सिंधु ज्यों पार होत नहिं डोंगन फेरे।
सूरदास तैसे ये लोचन कृपा जहाज बिना को फेरे॥

[illegible] [illegible] इसमें मिला हुआ बुनिये—(सं० [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] बहुत। अवगाह—अथाह [illegible] [illegible] [illegible] को=कौन।

कहा करौं अति सुख, दुइ नैना उमँगि चलत भरि पानी।
'सूर' सुमेर समाइ कहाँ धौं बुधि बासनी पुरानी॥

शब्दार्थ—चूक=भूल। कला=कारीगरी। बासनी=बाँस की टोकरी।

भावार्थ—(राधिका वचन) मैं जानती हूँ कि विधाता से (मेरी रचना में) भूल हो गई है। आज श्रीकृष्ण को देख देख कर मैं विधाता की इस भूल को समझ समझ कर पछताती रही। चतुर विधाता ने मेरे अंगों के बनाने में खूब सोच समझ कर बड़ी मेहनत से मेरे सब अंग को अच्छे बनाने में चतुराई तो की, मगर उसकी कारीगरी इतनी बात में बिगड़ गई कि मेरे शरीर में प्रति रोम दृष्टि न दी। क्या करूँ! कृष्ण के दर्शन का आनंद तो अपार है और मेरे दो ही नेत्र हैं, वे भी पानी से भर कर उमड़ चलते हैं। (पूर्ण रीति से देख भी नहीं सकती) सूरदास कहते हैं कि यह रूप बुद्धि में भी नहीं आ सकता क्योंकि सुमेरु पर्वत बुद्धि रूपी छोटी टोकरी में कैसे आ सकता है।

अलंकार—[illegible] में रूपक से पुष्ट [illegible] समस्त पद में सौन्दर्य की अत्युक्ति।

नोट—सौन्दर्य वर्णन में सूर ने इस पद में हद कर दी है, कमाल है।

हज़ार बार जन्म मरण का कष्ट भोगना पड़े"। विष्णु ने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकता, पर तुम्हारा वरदान मैं इस प्रकार पूरा करूँगा कि अन्य मनुष्यों के हज़ारजन्म मेरे एक अवतार के बराबर हैं, अतः मैं खुद राजा अम्बरीष के दस हज़ार जन्मों के बदले दस अवतार धारण करूँगा। धन्य है प्रभु की ऐसी दयालुता को।

२—अजामिल

एक महा पतित वेश्यागामी ब्राह्मण था। बकरी के चमड़े का व्यौपार भी करता था—इसीसे उसका नाम "अजामिल" हो गया था। किसी साधु के उपदेश से उसने अपने वेश्यापुत्र का नाम 'नारायण' रखाया था। मरते समय पुत्र को याद करके उसने उसका 'नारायण' नाम लेकर पुकारा और दम तोड़ दी। नारायण भगवान् के पार्षदों ने नाम महिमा के बल समझा यमदूतों को मार भगाया और अजामिल को वैकुण्ठ में ले गए।

३ गज-ग्राह

एक गन्धर्व शापवश 'गज' हुआ। जवानी में सैकड़ों हथिनियों को साथ लिये वन में विहार करता फिरता और हर समय मस्त रहता था। एक समय एक सरोवर में पानी पीने गया। वहाँ ग्राह ने उसे पकड़ा। हाथी ने ग्राह से बहुत युद्ध किया, पर भीतर जल में शक्ति हीन

गया। हथिनियों से कुछ सहायता न की। जब यह हाथी डूबने लगा और देखा कि कोई भी सहायक नहीं, तब एक कमल पुष्प तोड़ कर 'नारायणायार्पणमस्तु' किया। इस प्रकार से दुखित होकर नारायण ने तुरंत अपने चक्र से ग्राह का सिर उड़ा दिया और हाथी को उठा कर सुख-स्थल पर पहुँचाया।

४—गणिका

एक वेश्या अपने कुकर्म में निरत रहते हुए भी किसी साधु के कहने से एक सुग्गा पाल रखा था और सदा उसे सिखाने की गरज़ से राम राम सीताराम रटाया करती थी। इस बहाने से उसके मुख से भी कई बार रामनाम निकल जाता था। इसी के प्रभाव से अंत में उसकी मुक्ति प्राप्त हुई।

५—द्रौपदी

इनकी कथा बहुत प्रसिद्ध है।

६—ध्रुव

राजा उत्तानपाद के पुत्र थे। सौतेली माता के निरादर से [illegible]

७—नृग (राजा)

एक बड़े दानी राजा थे। एक लाख गोदान नित्य कर लेते, तब भोजन करते थे। एक समय ऐसा हुआ कि राजा ने जो गाय कल्ह एक ब्राह्मण को दी थी, वही गाय उस ब्राह्मण के घर से छूट उन गायों में आ मिली थी, जो राजा ने आज दूसरे ब्राह्मण को दी थी। दोनों ब्राह्मणों में झगड़ा हुआ। एक कहता कि मैंने कल्ह इसे दान में पाया था। दूसरा कहता कि मैंने आज दान में पाई है। झगड़ते झगड़ते दोनों राजा के पास गए। जो ही ब्राह्मण पूँछता कि तुमने यह गाय मुझे दी थी न? राजा सिर्फ सिर हिला देते। ब्राह्मण सन्तुष्ट न हुए, गाय को वहीं छोड़, घर को चले और शाप दिया कि "जा तू गिरगिट हो।" राजा गिरगिट होकर हज़ारों वर्ष द्वारका के निकट एक कुएँ में पड़े रहे। अन्त में कृष्ण ने अपने चरण स्पर्श से उसका उद्धार किया और दिव्य देह देकर स्वर्ग भेजा।

८—प्रह्लाद

कथा बहुत प्रसिद्ध है।

९—बलि

कथा बहुत प्रसिद्ध है

१०—व्याध

एक ब्राह्मण व्याधों की संगति में पड़ कर लूट मार करता

जिसको लूटता उसे मार भी डालता। बहुत दिनों बाद सप्त ऋषियों के दर्शन से उसको कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ और उनके उपदेश से 'मरा मरा' जप कर शुद्ध हृदय होकर तप करने लगा। इतना कठिन तप किया कि अचल रहने के कारण उसके शरीर के चारों ओर दीमकों ने बमीठा बना डाला। संस्कृत भाषा में बमीठे को 'वाल्मीक' कहते हैं। तप सिद्ध होने पर वही व्याधा 'वाल्मीक' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

११—सुदामा

कथा बहुत प्रसिद्ध है।

अलंकार

रूपक—जो काहू के रूप इव रूप बनावै और।
रूपक ताही सों कहैं सवै सुकवि सिरमौर।

(अथवा)

उपमानरु उपमेय तें वाचक धर्म मिटाय।
एकै कै आरोपिये सो रूपक कविराय।

उपमेय पर ही उपमान का आरोप करना रूपक कहलाता है।

जैसे—चरण-कमल, मुखचंद, नखचंद इत्यादि।

वीप्सा—यह शब्दालंकार है। इसमें कोई आकस्मिक भाव प्रगट करने के लिये एक शब्द को दो या तीन बार लिखते हैं। जैसे—बार बार बन्दौं पदपावन। बाप रे बाप, ऐसा करते हो।

सांगरूपक—इस रूपक में कवि उपमान के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में पूर्ण रूप से करता है, जैसे पद नं० ३, ४.

[illegible]—[illegible] जाता है [illegible] पद [illegible] जैसे—[illegible] गोपाल, और नंदलाल शब्द हैं। [illegible] शब्दों का रोक [illegible] सुख या आनंद दे सकते हो।

जैसे पद नं० १२ की अंतिम पंक्ति में अथवा।

दो०—निरखि रूप नँदलाल को दृगन रुचै नहिं आन।
तजि पियूष कोऊ करत कटु औषधि को पान॥

हेतु—(दूसरा)

कारण कारज ये जबै लखत एकता पाय,

जैसे—तुम्हारी भक्ति हमारे प्राण।

तुल्ययोगिता (तीसरी)—

सम कहिये उत्कृष्ट गुण बहु के एक महँ लाय।

जैसे—पद नं० २२ की छठीं पंक्ति में अथवा

माय जोहारै कौन को कहा बड़ै हैं काम।
मित्र मातु पितु बन्धु गुरु साहेब मेरे राम।

रूपकातिशयोक्ति—जहँ केवल उपमान कहि प्रगट करैं उपमेय

श्लेष—राय नीति अरु भाँति बहु आवत जामें अर्थ।

जैसे—पद नं० २५ की दूसरी पंक्ति में 'हरि' शब्द है।

तद्गुण—तजित अलंकृत मानिये कहौ त्यागिये गौन।
ताही के प्रतिबिम्ब ही बरनत जाके गौन।

जैसे—पद नं० ३१ की चौथी पंक्ति में "तजि गङ्गोदक पिये कूप जल" (अथवा 'विमल सुधाकर ना निखि गाढ़।'

सन्देह जहाँ सन्देह अर्थ को कहिये बहुरि विधान।

जैसे—पद नं० ३० में अथवा मयंक मा जो करै सेवकाई।

प्रतीप—उपमेय को उपमान बनाना या उपमेय में उपमान को निरादृत या लज्जित करना।

जैसे—पद नं० ३० की पंक्ति ५, ६ में है।

लोकोक्ति—लोकोकति जहाँ लोक की कहनावनि ठहराय,

जैसे—पद नं० ३३ में।

पिहित—जहाँ छिपे पर भूल को समुझि करै कछु काज।

जाते प्रगटै जानियो सो पीहित कविराज।

व्यतिरेक—उपमाने उपमेय में अधिक कछू गुण होय।